Chap-1

प्रथम अध्याय

कवि जयसिंह 'व्यथित'

जीवनी एवं व्यक्तित्व

कवि जयसिंह 'व्यथित' जीवनी एवं व्यक्तित्व

गुजरात की धरती हिन्दी साहित्य सृजन के लिए बहुत ही उर्वरा कही जा सकती है। यहाँ जैन कवियों द्वारा रचित विपुल बृजभाषा साहित्य तो है ही। हेमचंद्रचार्य के व्याकरण से लेकर आज तक सिद्धांत एवं भावना पक्ष के काव्य सृजन अनर्वरक होते रहे हैं। अखा, नरसिंह महेता, दयाराम, महेरामणसिंह, गोविंद गिल्लाभाई, दलपतराम, बंसीधर आदि अनेक गुजरात के समर्थ भाषा कवियों में हिन्दी साहित्य के भंडार को अक्षर निधियों से सम्पन्न किया है। गुजरात की सामयिक साहित्य सृजना की गौरवमय शृंखला में जयसिंह 'व्यथित' जी का हिन्दी साहित्य सृजन भी विशेष उल्लेखनीय रहा है। प्रस्तुत प्रबंध में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला जा रहा है।

नाम :- राजपूत जयसिंह बहादुर सिंह (जे.बी. राजपूत) (जयसिंह 'व्यथित')

जन्म :-5 जनवरी, 1937

ग्राम :- विक्रमपुर

पोस्ट :- हड़हा (भरखरे)

मौजा :- तेरयें-चौकिया

जिला :- सुलतानपुर (राज्य :- उत्तर प्रदेश)

कर्मभूमिः- 30 मई 1957 से अहमदाबाद (गुजरात)

'व्यथित'जी का जन्म उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जिले के विक्रमपुर गाँव के एक राजपूत घराने में 5 जनवरी सन् 1937 को उस समय हुआ जब सारा देश स्वतंत्रता के लिए संग्रामरत् रहा था। और कुर्बानियाँ दे रहा था। देश में सुलतानपुर का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक वर्चस्व ग्रामाभिधान विक्रमपुर से आकलित किया जा सकता है। पिता का नाम रामनायक सिंह और महनीययशा माता का नाम धनपत्तीदेवी था। अनतिकाल में ही पिता का साया सर से उठ गया। बहुत बड़े परिवार के आपसी खींचतान में पितृहीन बालक को उन सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा जो बचपन की कोमलता को अपेक्षित होती हैं । शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध नहीं था। काफी देर में (12 वर्ष की अवस्था में) चौकिया ग्राम स्थित प्रारंभिक विद्यालय में इनकी शिक्षा का सूत्रपात हुआ। घर से सात किलोमीटर भयावह मार्ग को पार करते लम्भुआ स्थित जू.हा. स्कूल से कक्षा आठ पास किए। हाईस्कूल भरखरे स्थित प्राइवेट विद्यालय से सन् 1952/53 में पास किया जो विक्रमपुर के निकटस्थ है। येन केन प्रकारेण इण्टर मिडियेट प्रतापगढ़ के के.पी. कालेज से सन् 1954/55 में उत्तीर्ण होने के उपरांत कवि स्वाध्याय द्वारा मनन चिंतन गहराइयों में उतरते चले गये। इसी बीच सामयिक प्रथानुसार कच्ची उम्र में ही जून सन् 1947 में इनका विवाह बहुँचरा, (प्रतापगढ़) के निवासी स्वनाम धन्य रुद्रप्रताप सिंह की मातृहीन कन्या शान्तीदेवी के साथ सम्पन्न हो गया था। इत्थं ब्रह्मचर्य जीवन में ही इन्हें गार्हस्थ्य जीवन की विवशता उठानी पड़ी। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की सोच और समझ इन दिनों परिपक्व तो नहीं किन्तु अवस्था के अनुपात में कई गुना अधिक और समृद्ध अवश्य थी।

सन् 1945 में चौकिया प्राइमरी स्कूल में भर्ती हुए। अपनी कुशाग्र बुद्धि, लगन

और कठोर परिश्रम से इन्होंने दो वर्ष में ही प्राईमरी से जू.हा. लम्भुआ प्रवेश किया। 1950-51 में बरियार शाह इण्टर कालेज भरखरे में कक्षा नौ में प्रवेश लिया और सन् 1953 में कामर्स से हाईस्कूल और 1954 में इण्टर करके 30 जुलाई 1957 में अहमदाबाद म्युनिसिपल कारपोरेशन के प्राईमरी विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्यभार ग्रहण कर लिया किन्तु साथ-साथ आपने अपना स्वाध्याय जारी रक्खा और 1960 में ज्येष्ठ हिन्दी अध्यापक का प्रशिक्षण प्राप्त कर आप हिन्दी प्राध्यापक के रूप में पालड़ी अहमदाबाद में हिन्दी शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठापित हुए और गुजरात विद्यापीठ से 'सेवक' की डिग्री प्राप्त कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'साहित्य रत्न' होकर 1970 मे बी. एड. की उपाधि प्राप्त की। साहित्यरत्न एवं विद्यावाचस्पति (पी-एच.डी.) की उपाधि आपने अर्जित की। 1973 में बेलपुर पहाड़िया स्नेहल उत्तर बुनियादी स्कूल में हिन्दी अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए और प्रधानाचार्य का पदभार ग्रहण कर लिया। 1982 से कड़जोदरा विद्यालय गुजरात में प्राचार्य के रूप में कुछ समय कार्य करने के पश्चात स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति लेकर अहमदाबाद आ गए। इस प्रकार डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने अपनी श्रमधर्मिता, लगन और परिश्रम से जीवन के अनेक पडाव तो पार किए ही साथ ही साथ साहित्य साधना का कार्य भी जारी रखा।

श्री जयसिंह 'व्यथित' जी के जीवन की प्रमुख घटनाएँ :

गुजरात:- डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को अहमदाबाद में गुजरात की प्रमुख दलित संस्था जागृति एज्युकेशन ट्रस्ट द्वारा 'दलीतों का मसीहा' प्रबन्ध-काव्य के लिए दिनांक 10 अप्रैल 1992 को जयशंकर सुंदरी हाल, अहमदाबाद में तत्कालीन गुजरात विधान सभा के अध्यक्ष श्री मनुभाई परमार के कर कमलों द्वारा सम्मानित किया गया।

उज्जैन (म.प्र.):- डॉ. आम्बेड़कर राष्ट्रीय अस्मितादर्शी साहित्य अकादमी उज्जैन (म.प.) द्वारा 14 अप्रैल 1994 को 'कवि संत रैदास कवि रत्न' की मानद उपाधि

से आपको विभूषित किया गया।

मुम्बई:- दहिसर मुम्बई में श्री गोस्वामी साहित्य मंच द्वारा दिनांक 26-12-1996 को नटराज की कांस्य प्रतिमा के साथ आपको सम्मानित किया गया।

प्रतापगढ़ (उ.प्र.):- साहित्यालोक परियांवा प्रतापगढ़ (उ.प्र.) द्वारा 1994 को ''साहित्यश्री'' की मानद उपाधि से आपको विभूषित किया गया

कानपुर:- मानस-संगम कानपुर द्वारा 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य पर युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय के कर कमलों द्वारा दिसंबर 1994 को ताम्रपत्र प्रदान कर आपको सम्मानित किया गया।

मथुरा:- 'राष्ट्रभाषा रत्न' का सम्मान अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनंदन समिति, मथुरा उ.प्र. द्वारा आप 30 जनवरी 1994 को सम्मानित हुए।

बिहार:- 'विद्यावाचस्पति' (पी-एच.डी) की मानद उपाधि आपको 1995 में विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ भागलपुर बिहार द्वारा प्रदान की गई।

उज्जैन:- 'भदंत आनंद कौशल्यायन पत्रकारिता रत्न' से उज्जैन आंबेडकर अस्मितादर्शी साहित्य अकादमी द्वारा आप सम्मानित हुए।

बिहार:- 'हिन्दी साहित्य मार्तांड' की उपाधि (अखिल भारतीय हिन्दी भाषा सम्मेलन, भागलपुर बिहार) से आपको सम्मानित किया गया।

सरकारों द्वारा प्रदत्त पुरस्कार:- 'युग चिंतन' (काव्य-संग्रह) गुजरात साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित। 'बुढ़ापे की लकड़ी' कहानी संग्रह-गुज़रात साहित्य अकादमी द्वारा सम्मान। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सन्मानित।

जयसिंह व्यथित एक ऐसा गरिमायुक्त नाम है जिसने जीवन-संग्राम के मैदान में जय प्राप्त करके सिंह के समान अपने ओजस व्यक्तित्व को सुरक्षित रखा है। समाज और भाषा के प्रति सम्मोहन पैदा करनेवाला यह व्यक्ति विविध आयामों में कार्यरत रहकर अपनी प्रतिभा तथा गम्भीर वैचारिक-प्रज्ञा को शापित करता रहा है।

शैक्षणिक अध्ययन के उपरान्त स्वाध्ययन अधिक गंभीर गति से अग्रसर हुआ है। साहित्य, संस्कृति, शिक्षा और राजनीति इनकी प्रकृति में रचपच गए हैं, साहित्यकारों से भेंट, उनका सम्मान, कवि सम्मेलनों का आयोजन, काव्य गोष्ठियों का संचालन जैसे आयोजन तो इनके इर्द-गिर्द चक्कर खाते रहते हैं। शिक्षा के प्रति इनका समर्पण ईर्ष्या जगाता है।

1997 मार्च 30-31 को उत्तर प्रदेश सुलतानपुर जनपद की छोटी -सी बाजार शम्भूगंज में आयोजित विराट सर्वधर्म सन्त सम्मेलन का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने प्रवचन दिया।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का विवाह बचपन में ही सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार 11 वर्ष की आयु में ही हो गया था। विवाह प्रतापगढ़ जिले के बहुँचरा गाँव में सम्पन्न हुआ था। ब्याह् क्या होता है? क्यों होता है? यह सब उस समय वह जानते नहीं थे। भाँवर के समय डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को सोते से उठाकर लाया गया था। साड़ी पहनी हुई छुई-मुई सी लड़की को अपने साथ फेरे लेते समय बाल सुलभ जिज्ञासा वश पूछ ही बैठे थे, 'सुबह आम तोड़ने चलोगी' और सब लोग खिल खिलाकर हँस पड़े थे इससे अधिक 'व्यथित' जी को कुछ याद नहीं है। सन् 1946 तक श्वसुर सपरिवार ब्रह्मदेश में मांडले के पास टोर्जा शहर में रहते थे। उनका वहाँ व्यापार था। शांति देवी पूर्णतया धार्मिक प्रवृत्ति की, सुख-दु:ख में छाया की तरह साथ देने वाली पतिव्रता और सात्विक नारी है। 'गृह कारज नाना जंजाल' से 'व्यथित'जी को मुक्त रखती हैं। दो पुत्र और एक पुत्री ये तीनों भी अहमदाबाद में ही स्थापित होकर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को पारिवारिक सुख और सहयोग निरंतर देते रहते हैं।

'रैन बसेरा' मासिक पत्रिका का 1993 सितंबर में प्रथम अंक प्रकाशित हुआ जिसका तत्कालीन मुख्यमंत्री गुजरात के हाथो विमोचन हुआ था। समस्त भारत और विशेषकर दक्षिण भारत में हिन्दी की सेवा प्रचार-प्रसार करने के लिए अपनी

सारी जमा पूँजी लगाकर और अपने पूरे परिवार का सहयोग विशेषकर दोनों पुत्रो का सहयोग लेकर 'रैन बसेरा' के प्रकाशन में पूरी तन्मयता से जुड़ गए।

जीवन के विभिन्न पक्षों में सफलता एवं सुख का आनन्द तभी है, जब भौतिकता के साथ-साथ व्यक्ति का आध्यात्मिक शक्ति में अटूट विश्वास हो क्योंकि ईश्वरीय कृपा बिना व्यक्ति के जीवन में कुछ भी सुलभ नहीं है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने भी आध्यात्मिक आस्था एवं विश्वास पर जोर देते हुए प्रार्थना को जीवन का अंग माना है। श्रीराम नाम के जप में उनका अटूट विश्वास है। यही उनके जीवन का अमूल्य मंत्र है डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का जीवन आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत है। उनके आराध्य देव श्री पवनपुत्र हनुमान हैं उनकी स्तुति में उन्होंने हनुमान तीसिका की रचना की।

स्वतन्त्र भारत का जब संविधान बना तो हिन्दी को 14 सिम्बर 1949 को राष्ट्रभाषा का गौरव सैद्धान्तिक रूप से प्रदान किया गया था, परन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि आज तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा का वह गौरव नहीं प्राप्त हो सका। आज भी अंग्रेजी सिंहासनारुढ़ है और हिन्दी की स्थिति एक दासी की भाँति है। 50 वर्षों की दीर्घावधि के पश्चात् आज भी हिन्दी निर्वासिता की स्थिति में दिन काट रही है। 'मानस संगम' कानपुर के साहित्य समारोह में एक भेंट में जब इस विषय में चर्चा हुई तो वे बड़े क्षुब्ध दिखलाई दिए। उनका आक्रोश उनके हृदय सागर में उफान मारने लगा और उन्होंने दुखित मानसिकता में जो भाव व्यक्त किये वे विचारणीय है।

30 जून सन् 1957 को गुजरात की पावन धरती का आपने स्पर्श किया और कर्मभूमि बनाया। सर्वप्रथम अहमदाबाद नगर निगम में अध्यापन कार्य से सत्तर रूपया मासिक वेतन पर सत्संकल्प का श्री गणेश किया। डेढ़ वर्षोपरान्त पालड़ी के उन्नति विद्यालय में हाईस्कूल स्तर हिन्दी के शिक्षक हो गए। इस बीच अपनी शैक्षिक योग्यता का विस्तार करना भी आप नहीं भूले। अल्पावधि में ही अपने सादा

जीवन तथा उच्च विचारों के कारण गुजराती समाज में काफी लोकप्रिय हो गये। हिन्दी भाषियों में भी सर्वमान्य पहचान बन गयी। छात्रों में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि बेमिसाल थी। अपने नैतिक दायित्वों का निर्वाहन आपने सदैव प्राण-पण से किया। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अपने अध्यापन जीवन में कभी-कभी समय से पहुँचने के लिए पाँच रूपये की जगह पचास रुपयें भी मार्गव्यय देने पड़े हैं। अध्यनव् अध्यापन आपकी दैनिक चर्चा के बृहद् अंग हैं। रात्रि विश्राम की जगह साहित्य साधना का दीप आपकी व्यथा को सँवारता रहा है। वास्तविकता तो यह है कि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के हृदय में जिस सामाजिक, साहित्यिक, परिकल्पना की लहरें हिलोरें मार रही थीं और जो भावनाओं के कगार टूट-टूट कर गिर रहे थे उनका कोई आर-पार नहीं था। जीवन में कुछ अच्छा और सर्वोपरी करने की सद्वृत्ति अनन्त जीवन्त उत्कृष्ट अभिलाषा ही व्यक्ति को महान से महानतम बना देती है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी हार मानकर अथवा अपने को सीमित करके चुप्पी साध लेना कायरता और हृदय की कमजोरी समझते हैं। जीवन का अर्थ तो बंधना नहीं अपितु निरंतर प्रवाह है। ऐसा प्रवाह जो बांधे से बंधे नहीं, रोके से रुके नहीं। ये विचार व्यथित जी की चिन्तक दृष्टि से कभी ओझल नहीं थे। मन को वशीभूत कर कर्मेन्द्रियों को जागृत करना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है। धैर्य और संयम के साथ आपने सात वर्षों तक उन्नति विद्यालय में शिक्षण सेवा को पूरी निष्ठा और ईमानदारी से किया। तदुपरान्त एक बार सात अध्यापकों ने इस विद्यालय से इस्तीफा देकर एक नया पंकज विद्यालय खोला। मलिन बस्ती के होनहार छात्रों को कमल की भाँति विकसित करने बी. कोम, बी. एड. तक का शिक्षण-प्रशिक्षण होता है। व्यथित जी का सक्रिय सहयोग और सर्वविधि त्याग पंकज विद्यालय के इतिहास में अविस्मरणीय है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने धैर्य और आशा के साथ सभी विषम परिस्थितियों का सामना किया है। उन्होंने कभी भी भौतिक धन की तलाश नहीं की बल्कि

अन्त:करण के धन की तलाश में जीवन अर्पित कर दिया। घोर विपत्ति में भी ये अपने आन्तरिक सुखों से सदैव प्रफुल्लित रहे। पराश्रय की जगह आत्माश्रय ही आपका विहार रहा । अपनी मौलिकता के कारण ही आपने अपनी जीवन नौका को अथाह प्रवाह में भी बहाकर घबराना नहीं सीखा।

सन् 1968 में अहमदाबाद में जघन्य अपराध हुआ कत्ल-ए-आम। सितम्बर माह में अब्दुल गफ्फार खान (सीमान्त गाँधी) अहमदाबाद आए थे। उन दिनों डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी मुस्लिम बहुल राजपुर टोलानाका भोगीलाल की चाल कमरा नं.61 में रहते थे। इसी समय संसदीय क्षेत्र जमालपुर मुस्लिम बहुल आबादीवाले क्षेत्र में जगन्नाथजी के विशाल, बहुचर्चित मंदिर में एक अजीबो-गरीब घटना घटी। बहशियाना हरकतें हुई। मंदिर की गोशाला में हजारों की संख्या में गाये तथा हाथियों का विशाल समूह परिपालित था। मंदिर में श्रद्धालु भक्तों की निरन्तर भीड़, भजन-कीर्तन, प्रवचन चलता रहता। गायों पर कुछ हत्यारों ने एसिड डाल दिया। अनेक मूक, निरीह गायों ने जलकर तड़प-तड़पकर दम तोड़ दिया। हिन्दुओं के लिए गो माता के समान है। फिर क्या था ? कहर बरस गया। इस घटनाको लेकर जो जुनून उभरा वह नरसंहार के रूप में अत्यन्त उग्र एवं भयावह त्रासदी लेकर। धार्मिक उन्माद में भयंकर जातीय हिंसा की आग धू-धूकर जलने लगी। देखते ही देखते आदमियों को काटकर बिछा दिया गया। असंख्य हिन्दू-मुसलमान इस हिंसा के शिकार हुए। साधुओं को भी मौत के घाट उतारा गया। यह आग अनेक संवेदनशील इलाकों को भस्म करने पर तुल गयी। अहमदाबाद इस आग की चपेट में तहस-नहस था। एड़ी भर लहू जम गया। आग के ढेर में लोग लाशें ढूँढ रहे थे। अवर्णनीय घोर विभत्स दृश्य जो निहारा नहीं जा सकता, जरा-सी देर में उपस्थित था। सारा शासकीय तन्त्र मूक, बधिर की भाँति हतप्रभ था। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी जहाँ रहते थे, कुछ हिन्दी भाषियों के प्राण अवशेष थे। अफवाह गर्म थी कि व्यथित जी भी मौत के घाट उतर गये। हिंसा जब भड़कती है तब पहचान

खो जाती है। यह अनहोनी तो जान बूझकर पैदा की गयी थी। उन्माद मे संयम और धैर्य तोड़ दिया था। मानवता-दानवता के रूप में नृत्य कर रही थी। संस्कृति पछाड़ें खाकर रो रही थी। जिस समय प्राण बचाने के लाले पड़े थे उस समय भीषण नरसंहार में व्यथित जी सर पर पीला साफा बाँधकर सेवा-सैनिक के रूप में भूखे-प्यासे रहकर तीन दिन-रात शान्ति का सन्देश बाँटते रहे।

मीनूभाई तथा अनेक स्वयंसेवी, सर्वोदयी कार्यकर्ता जान हथेली पर लेकर, समूह में आग को बुझाने के लिए आकुल, व्याकुल भागते-दौड़ते रहे। लोगों को शांत करते रहे यद्यपि उस समय व्यथित जी का स्वास्थ्य इसकी इजाजत नहीं दे रहा था तथापि उनकी आत्मा में पता नहीं, कहाँ से कितनी शक्ति आ गई थी ? घायलों की सेवा करने, लाशों को हटाने, शान्ति का सन्देश देने का तपोपूत क्रम स्वयं को जोखिम में डालकर कार्य करते रहे । 15 दिनों तक इन स्वयंसेवकों का कैम्प चला। तत्पश्चात् यह भीषण आग समाप्त हुई। अनेक धर्मोवाले प्रभुता सम्पन्न इस गुलशन के अमन-चैन पर यह भीषण वज्रपात एक सवालिया निशान था और कभी साफ न होनेवाला काला धब्बा था।

दिनांक 12-5-1997 को गुजरात हिन्दी विद्यापीठ का द्वितीय सारस्वत सम्मान समारोह सम्पन्न हो चुका था। उस समय डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी व्यथित साधना केन्द्र विक्रमपुर, सुलतानपुर में ही थे। मई 1997 में ही डॉ. सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी (सह सम्पादक-रैन बसेरा) के यहाँ एक काव्यगोष्ठी का आयोजन करवाकर शाम को अम्बेडकर नगर (उ.प्र.) के विद्युत कॉलोनी में स्थित कविवर दयाशंकर तिवारी के यहाँ गोष्ठी में जाने के लिए मथुराप्रसाद सिंह 'जटायु', ओंकारनाथ श्रीवास्तव, डॉ. ओंकारनाथ त्रिपाठी (प्रकाशन-वन्दे भारती-साप्ताहिक), डॉ. रमाशंकर मिश्र आदि तैयार बैठे थे। इतने में विद्युत कार्यालय से एक चपरासी आया और पूछा-यहाँ कोमलशास्त्री हैं? जवाब में कोमलशास्त्रीने कहा-हाँ, क्या बात है? उसने कहा आपका फोन है, और जो कुछ समाचार टूटी-फूटी भाषा में उसने

लिखा था- डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का हार्ट अटैक हो गया है। आप तुरन्त विक्रमपुर चले आवे। इस समाचार ने सबको दहला दिया। सत्यता की जाँच, (फोन किसने किया, कहाँ से किया) दिल-दिमाग से होने लगी। अफरा-तफरी मच गई। तुरन्त ही डॉ. रमाशंकर मिश्र के साथ ओंकारनाथ श्रीवास्तव को डॉ. सुरेन्द्रजी के घर उन्हें बुलाने के लिए संदेश दिया गया और काव्य गोष्ठी इस हालत में नहीं हो पायेगी इसकी सूचना भी दी गई। उधर सुरेन्द्रजी आमंत्रित सैकड़ों आदमियों की भोजन व्यवस्था आदि करके प्रतीक्षारत थे। समाचार सुनते ही वे भी भागे हुए दु:खी मन से आए। 'जटायु' जी के पास गरुड़जी के घर का फोन नम्बर था। उन्होंने समाचार को सत्यापित करना चाहा । वहाँ से फोन पर जो अशुभ समाचार आया वह यहाँ कहा नहीं जा सकता। उससे पहले वाले समाचार की पुष्टि और सन्देह खत्म हो गया। सबकी आँखे सजल थीं। काटो तो खूँन नहीं। सबके सब अवाक् जैसे साँप सूँघ गया हो। दयाशंकर तिवारी के सौजन्य से एक जीप तुरन्त बुलाई गई। पुरी टीम आँसू बहाते विक्रमपुर पहुँच गई। रात के करीब साढ़े आठ बजे थे। पुरी टीम देखा कि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी बाहर भले-चंगे लेटे हैं। अस्वस्थ हैं, दवा हो रही है। सबको देखते ही आश्चर्यमय उठकर बैठ गये। व्यथित जी के सुपुत्र कर्मयोद्धा डॉ. कृष्णकुमार ठाकुर ने हँसते हुए कहा-''आप लोग आ गए हैं, बाबूजी बिलकुल ठीक हो जायेंगे। सभी लोगों ने चैन की साँस ली। परमप्रभु को धन्यवाद दिया। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के आग्रह पर वहीं काव्य गोष्ठी संपन्न हुई। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी घण्टों बैठकर काव्यानन्द लेते रहे। रात्रि भोजन विश्राम के बाद प्रात: सभी लोग वापस आये। इस घटना को व्यक्त करने के पीछे आपकी साधना-साधुता और उच्च मनोदशा को अभिव्यक्त करना लक्ष्य है। काव्य के लिए जीवन सारा दु:ख आप को सह्य है। सच भी है, सम्पूर्ण दु:खों को दूर करने एवं मन को शान्त करने वाला आनंद काव्यानन्द ही है।

इसके औचित्य में 1971 की उनके साथ घटित बिहार के सहरसा जनपद की

एक घटना का उल्लेख सर्वथा समीचीन होगा। विनोबाजी के आदेश के अनुपालन में जयप्रकाश नारायणजी के सर्वोदयी चिन्तन के प्रचार-प्रसार के लिए उनके सहरसा-शिविर में पहुँचने पर उन्हें प्रखण्ड दायित्व निर्वहन हेतु मधेपुरा सौंपा गया। स्थानीय एक आदमी को मार्गदर्शन की सहूलियत की दृष्टि से उनके साथ कर दिया गया। शिविर में इन्हें मधेपुरा के अपराधिक कीर्तिमानों की जानकारी भी दी गई तथा सलाह दी गई कि वह न तो खाने-पीने के लिए किसी से कोई सहयोग मागेंगे, न ही अपने साथ कोई धनराशि रक्खेंगे। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के पास इस प्रकार कंधे से टंगे हुए झोले में केवल विनोबा साहित्य होना चाहिए था, फिरभी उन्होंने पन्द्रह रूपए अपनी जेब में इसलिए डाल लिये कि किसी न किसी प्रकार की मुसीबत में वह काम आयेंगे। भूख से अपनी प्राण रक्षा हेतु उन्होंने इन रूपयों का सदुपयोग करना तो चाहा, लेकिन उनका मार्गदर्शक अमोलीराम रूपये लेकर कहीं चम्पत हो गया। संयोग या सौभाग्य ही कहिए कि गर्मी और पेट की ज्वाला से छटपटाते उनके प्राण एक गरीब अछूत ने उन्हें नमक और एक रोटी खिलाकर बचाए।

इसी प्रकार व्यथित जी एक अन्य उल्लेखनीय सम्पादकीय में 'मितव्ययिता' की पर्याप्त चर्चा करते हैं तथा जीवन में नई आशा और विश्वास का सृजन करते हैं। बचपन में दादी माँ व्यथितजी को बराबर समझाती कि प्रकृति ने हमें मुफ्त में बहुत सारी चीजें बहुतायत से दी हैं किन्तु उनका उपयोग हमें खूब़ सोच समझ और विचार करके करना चाहिए। पानी का बिगाड़ कम से कम करें, दातून छोटी करें, अनाज का एक एक दाना बचाकर खायें, उसका बिगाड़ कर दुरूपयोग न करें नहीं तो भगवान के यहाँ जब जायेंगे तो वे इन सबका हिसाब माँगेंगे और जब हम हिसाब नहीं दे पायेंगे तो वे हमें दंडित करेंगे। मितव्ययिता जीवन जीने की कला का स्व उदाहरण प्रस्तुत कर इसके व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करते है। व्यथितजी के सम्पादकीय साहित्यिक और सामाजिक मूल्यों की स्थापना के साथ राष्ट्रोपयोगी

मूल्यों को अवधारित करते हैं। उनके सम्पादकीय अत्यंत उपयोगी, सार्थक, बहुमूल्य तथा शोधपरक हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के विचार, चिन्तन, अनुभव और जीवन मूल्यों का इनमें कोषागार सुरक्षित हैं।

डॉ. व्यथितजी एक ऐसी विभूति हैं जिनमें जन्मजात ईश्वर प्रदत्त कवि का रूप सहज ही स्पष्ट हो जाता है। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में कुछेक ऐसी घटनाएँ घटीं कि व्यथितजी को साहित्य का सन्त बना दिया। संकट मोचन हनुमान के परम भक्त बन गये जबकि एक माता ने उन्हें संकट काल में 'हनुमान-चालिसा' का पाठ करने की सद्प्रेरणा दी। एक दिन उन्हें अंधेरी रात में कुछ ऐसा भ्रम हुआ कि कोई मानवाकृति में उनके आग-पीछे चल रहा है निर्जन में बालक जयसिंह को संकट मोचन हनुमान का स्मरण हो आया और 'हनुमान-चालीसा' पाठ प्रारम्भ कर दिया। फलत: वह भूत-प्रेत की भयावह आकृति आँखों से ओझल हो गयी। बालक जयसिंह इसी स्मरणीय घटना के परिणाम स्वरूप संकट मोचन हनुमान के परमभक्त हो गये। इसी भक्ति भावना को अनुभूति के साथ पद्यबद्ध कर सरलतम रूप में अभिव्यक्त किया गया है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की कृति 'हनुमान तीसिका' (लघु खण्ड-काव्य) अपने आप में अनूठी कृति है। हनुमान-भक्त-व्यथितजी का जीवन ही भक्तिमय हो गया फलत: अनेक कृतियाँ, जो भक्ति एवं श्रद्धा की परिचायक है, जोकि मनोयोग से रची गयीं। सन्1957 की 30 मई अपना जन्म स्थान छोड़कर अहमदाबाद गये तथा 30 जुलाई 1957 में अहमदाबाद म्युनिसिपल कोरपोरेशन में प्रायमरी हिन्दी स्कूल में शिक्षक हो गये। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी समय-समय पर अपनी योग्यता बढ़ाते रहे थे। अवसरानुकूल लाभ लेकर क्रमश: उन्नति करते गये। दो स्कूलों बेलपुरा पहाड़िया में स्नेहल उत्तर बुनियादी विद्यालय(1973) एवं कड़जोदरा विद्यालय 1982 (दोनों हाईस्कूल-गुजराती माध्यम) में अपना प्रधानाचार्य पद को सुशोभित किये एवं 8 जुलाई 1986 को स्वैच्छिक निवृति लेकर पुन: अहमदाबाद में संचालक बन गये। डॉ. व्यथितजी ने

शान्ति निकेतन प्राथमिक शाला, शान्ति निकेतन हाईस्कूल की स्थापना भी की।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के अनुसार इण्टर (कॉमर्स) द्वितीय वर्ष में अपने चचेरे भाई के साथ इलाहाबाद के मनौरी स्थान पर एअरफोर्स में भरती हेतु गये। साक्षात्कार में केवल डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ही पास हुए अत: अपने चचेरे भाई एवं एक मित्र के खातिर इन्होंने लगातार कठिन परिश्रम करने के बाद एअरफोर्स की भर्ती को नकार दिया। कठिनाइयों के समय साहसिकता का परिचय देकर उन्होंने अपने जीवन को पग-पग पर काफी परेशानियों का सामना करते हुए आगे बढ़ने की साहसिकता जुटायी। वे और उनके साथी बिनूभाई को बहलगा जाना था। चार बजे स्टेशन पहुँचते-पहुँचते गाड़ी छूट गई, आटो रिक्शा दौड़ाया पर पेट्रोल खत्म। उस जमाने में गाड़ी छोटी लाइन पर चलती थी, जो बहुत ही धीरे चलती थी। भागते-भागते नरोड़ा स्टेशन पहुँचे। गाड़ी के पिछले डिब्बे को पकड़कर लटक गए। अत्यन्त जोखिम एवं साहसिकता का परचिय देते हुए वे हिम्मत नहीं हारे यद्यपि उनके पैर लहूलुहान हो गए थे।

सन् 1955 में भीषण बाढ़ आयी थी। के.पी. कॉलेज का साथी लड़का कड़ेदीनसिंह को कॉलेज से 25 कि.मी. दूर घर बाढ़ से घिरने का प्रमाण-पत्र लेकर सुबह कॉलेज में देना था। तेज बारिश, रात का समय, सायकिल से दोनो चले। सायकिल पंचर काफी परेशानी से पैदल चले। रस्ता भूल गये। ऊसर में इधर से उधर भटकते रहे। सूर्योदय के साथ ग्राम प्रधान के घर पहुँचकर प्रमाण-पत्र लिया और समय से कॉलेज पहुँचा दिया।''

सन् 1988 के जुन माह में दो युवक एक मोटर सायकिल से व्यथित जी के पास (डॉ. वृन्दावन त्रिपाठी 'रत्नेश') आए। उनके पास पुस्तको का एक बड़ा गट्ठर था, जिसे मुझे सौंपा। एक पत्र भी मुझे दिया। दरअसल व्यथित जी ने साहित्यक संस्था साहित्यलोक को, सम्मानार्थ अपनी कृति व जीवन परिचय अपने भतीजों के द्वारा प्रेषित किया था। 14 सितम्बर 1988 को 'साहित्यलोक' ने भव्य समारोह

में उन्हें 'साहित्य श्री' सम्मानोपाधि प्रदान कर सम्मानित किया।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की जब आयु 5,6 वर्ष की थी, तब गाँव से कुछ दूर लगने वाले मेले में अकेले गये थे। झाबरि, चकडोल का आनन्द प्राप्त कर ढ़ोलक, मंजीरें की मधुर ध्वनी पर रामायण गाने वालों की मंडली में बैठकर मज़ा लेने लगे, धीरे-धीरे मेला खिसकने लगा, अँधेरा हो गया, कोई साथी न मिला सब जा चुके थे। यह सोचकर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी हृदय काँप उठा क्योंकि मार्ग में पलाश का जंगल, श्मसान भूत-प्रेत का भय सताने लगा। उनकी मौसी ने हनुमान चालीसा रटाया था और बताया था कि जब कभी डर लगे इसका पाठ करना, हनुमानजी सहायता करेंगे। इस बात की स्मृति डूबते को तिनके का सहारा बनी। हनुमान चालीसा का पाठ करते तीव्रगति से शीश नीचा किए चल रहे थे। अचानक पत्ती खुरकी तो पेडू हिल गयी, किन्तु सामने देखा तो एक आदमी आगे चल रहा था, पास जाने का लाख प्रयास किया किन्तु दूरी यथावत बनी रही। गाँव के पास इस प्रकार पहुँचे तो सामने दादी तथा मौसी व्यथित जी को ढूँढने सामने से आती दिखाई दी। वह आदमी अदृश्य हो गया। मौसी ने दौड़कर गले लगा लिया पूछा डरे तो नहीं। व्यथितजी ने कहा हनुमान चालीसा जो आपने कंठस्थ कराया था वही पाठ करता आ रहा था, उन्होंने पूछा कि वह आदमी कहाँ गया? व्यथितजी ने कहा पता नहीं कहाँ गया, मौसीजी कहा वही हनुमान जी थे। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी तब से हनुमानजी पर दृढ़ से दृढ़तर भक्ति करते हैं। तब से हनुमानजी आराध्य देव हैं।

हिन्दी एवं गुजराती के कवि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा वर्ष 1996 में 'अनुशंसा पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। डॉ. 'व्यथित'जी की धारणा एवं सद्‌विचार हैं कि सार्थक साहित्य सामाजिक विषमता के समूल उन्मूलन का भगीरथ प्रयास करता है। कितना सार्थक सत्य है। पुरस्कार की घोषणा के पश्चात् डॉ. सुशीलकुमार जी पाण्डेय 'साहित्येन्दु' रीडर, संस्कृत सन्त

तुलसीदास स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय कादीपुर, सुलतानपुर (उ.प्र.) ने प्रथम साक्षात्कार में डॉ. व्यथित जी से प्रश्न किया, ''आपको हिन्दी संस्थान उ.प्र. द्वारा पुरस्कार की घोषणा से कैसा अनुभव हो रहा है?'' डॉ. व्यथित जी ने बड़ी ही सहजता से उत्तर दिया 'वैसा ही अनुभव हो रहा है, जैसा स्वयं सेवक को उसकी सेवाओं के सामाजिक एवं प्रशासनिक मान्यता मिलने पर होता है। जैसे पिता को पुत्र की मान प्रतिष्ठा देखने पर होती है।'

दृढ़ इच्छा शक्ति:-

घटना सन् 1986 की है। आज भी उन स्थितियों और परिस्थितियों को जब ध्यान में ले आता हूँ तो रोंगटे हिल जाते है। ओढ़व की इस निर्जन एवं मलिन बस्ती में शिक्षा ज्योति की संकल्पना ही इसके पीछे छिपी हुई थी। सन् 1985 से यहाँ एक प्राथमिक शाला कक्षा 1 से 7 तक इसका आधार बनी। शाला का नाम शान्ति निकेतन प्राथमिक विद्यालय हुआ।

जून 1987 ई:। एक ओर शांति निकेतन प्राथमिक विद्यालय को हाईस्कूल करने का दृढ़ संकल्प था तो दूसरी ओर अर्थाभाव की विभीषिका का हाहाकार। हाईस्कूल खोलने के लिए नियमानुसार कम से कम तीन कमरों का निर्माण जरुरी था। जमीन भी कोई अपनी नहीं थी। उसे भी खरीदना था। हाईस्कूल खोलने में मान्यता फार्म भरना और उसके लिए भी ज्वाइंट एकाउण्ट के साथ पचास हजार रूपयों की धनराशि बतौर जमानत जमा करना था। एक साथ इतनी लम्बी शर्तो को वही पूरा कर सकता है जिसकी तिजोरी धन से भरी हो।

3-7-87 की रात भी पारिवारिक विचार विमर्श चला था। 14-7-87 को व्यथित जी कड़जोदरा विद्यालय के आचार्य पद से स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेकर घर आ गए । परिवार के लोग एवं इष्ट-मित्र व्यथित जी के इस कार्य से स्तब्ध थे। अभी नौकरी में सात वर्ष शेष थे। विद्यालय भी नहीं खुला और सेवा निवृत्ति। कैसे पारिवारिक व्यवस्था चलेगी ? सारा अनागत दृश्य एक साथ सबकी आँखो में नाच

गया। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का यह साहस अनागत के भय से कदापि विचलित नहीं हुआ।

सेवा निवृति की आश्चर्यमयी घटना के साथ ठीक तीसरे दिन डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने नरोड़ा पद्मावती नगर, स्थित आवास बेच दिया, मात्र पचास हजार रूपयों में। नरोड़ा का मकान बिकने के कारण सारा परिवार सड़क पर आ गया। पूरे परिवार को कौन पनाह दे ? यह एक भारी समस्या परिवार के सामने दुसह रूप में भयंकर मुंह बाये खड़ी थी। व्यथित जी नरोड़ा का मकान खाली कर शांति निकेतन विद्यालय में परिवार लेकर चले आए। विद्यालय के एक कमरें में रहन-सहन की सारी व्यवस्था हुई। उसी एक कमरे में आधे भाग में पर्दा डालकर रसोई घर बनाया गया। आधे भाग में सरसामान और गुजर-बसर की व्यवस्था की गई। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का कितना कठिन था वह समय। कितना दैन्य था एक कठिन कार्य के पीछे। शाला के मुख्य द्वार की तरफ पारिवारिक निकास बनाया गया और पिछले दरवाजे को शिक्षकों और छात्रों के विद्यालय में प्रवेश का द्वारा बनाया गया। यह विषम घड़ी किसी भी सामान्य को जड़ तक हिला देने में पूरी तरह समर्थ थी।

एक दुखद प्रसंग :

बात लगभग 1947-75 की है। जब डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को अहमदाबाद का पंकज विद्यालय छोड़कर स्नेहल वेलपुरा में स्थाई हुए अभी मुश्किल से दो वर्ष हुए थे। संस्था के भूमिदाता पहाड़िया गाँव के गाभा जी ठाकोर, जो व्यथित जी के परम हितैषी थे, उनका स्वर्गवास हो चुका था। घर में उनकी विधवा और 14-15 वर्ष का बेटा था। घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी।

गाभा जी की विधवा, बूढ़ी माँ का स्वभाव अत्यंत उग्र व हल्की मानसिकता वाला था। कुछ विध्नकर्ता लोगों ने उसे चढ़ाया-बुड्ढा तो कॉलेज को चार एकड़ उन्नीस गुंठा जमीन देकर मर गया, जिसमें कॉलेज वाले तागड़ धिन्ना कर रहे हैं और

तुम माँ-बेटे एक-एक दाने के लिए तरसते हुए यहाँ घर में बैठे-बैठे मंजीरा बजा रहे हो। चलो उठो, हम लोग तुम्हारी मदद करेंगे। अब या तो कॉलेज (स्नेहल विद्यालय को स्थानीय लोग कॉलेज ही कहते थे) तुम्हारी जमीन की कीमत देगा नहीं तो जयसिंह भाई को मार कर भगा देंगे और कॉलेज पर तुम्हारा कब्जा हो जाएगा।

वह अपने मददगारों के साथ इलाके के दस गाँवों में घूम-घूमकर खूब रोई। लोगों की सहानुभूति जगी और एक दिन रात्रि के दस बजे सैकड़ों की संख्या में आ-आकर लोग स्नेहल विद्यालय परिसर में जमा होने लगे। व्यथित जी परिस्थिति की गंभीरता समझ गए, वे कुछ विद्यार्थियों को आनन-फानन में बेलपुरा तथा मीठाना मुवाड़ा गाँव भेजकर मेरूसिंह मुखी तथा धीरसिंह को किसी अनहोनी की आशंका से आगाह करवा दिए। उधर से भी काफी संख्या में धारिया और लाठियों के साथ लोग आकर जमा हो गए। दोनों तरफ की भीड़ को देखकर लगता था विद्यालय परिसर आज सचमुच कुरुक्षेत्र में बदल गया है।

पंचायत शुरू हुई। दोनों तरफ की बातें सुनने के बाद मीठाना मुवाड़ा के धीरसिंह अचानक अकड़ते अकड़ने लगे। उन पर मेलड़ी माता की सवारी हो गई थी। पंचायत करने आए लोग काप‌ँ गए क्योंकि उस क्षेत्र के सभी लोग अंधश्रद्धा के शिकार थे। कुछ लोगों ने हाथ जोड़कर सिजदा किया, और मनाते हुए बोले- 'महाराज आप कौन हैं? तुम पूछते हो मैं कौन हूँ ? तो सुनो-मै मेलड़ी माँ हूँ। गाभा जी मेरा अनन्य भक्त था। आज उसके नाम पर बट्टा लगाने तुम सब यहाँ आए हो। याद रखो मैं तुम सबको एक-एक करके बीन-बीन के खा जाऊँगी और इस बुढ़िया तथा उसके बेटे को अभी मैं गाभा जी के पास पहुँचा देती हूँ।' चारों तरफ से माँ क्षमा-करो-माँ क्षमा करो की करुण पुकार गूंज उठी। माँ ने कहा- 'तो सुनो, तुम सभी फिर से कान खोल कर सुनलो-जयसिंह भाई एक तपस्वी आदमी हैं वे तुम्हारा दु:ख दुर करने अयोध्या से यहाँ आए हैं। उन्हें सताओगे तो मैं तुम्हें

छोड़ूँगी नहीं। गाभा जी मेरा भक्त था, मेरे कहने से ही उसने जमीन दान में दी थी।'

दुखद यात्रा :

अक्टूबर 1984 की तारीख थी। व्यथित जी एक रिक्शेवाले को कह चुके थे कि हमें 9 बजे सबेरे लम्भुआ पहुँचना है। उन दिनों इधर से कानपुर के लिए एक बस जाती थी किन्तु डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को ठीक से पता नहीं था। सबेरे के सात बज रहे होंगे, व्यथित जी रिक्शेवाले की वाट देख रहे थे किन्तु जाने क्या कारण पड़ा वह नहीं आया। एक पड़ोसी ने बताया कि आप बस से चले जाइए। व्यथित जी पूरी तरह से तैयार भी नहीं थे कि इतने में बस दिखाई पड़ी। बस रोकी गई। बस में लगभग पन्द्रह सवारियाँ और रही होंगी, वह भी सब की सब महिलाएँ।

बस अमेठी पहुँची तो डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने देखा कि हड़कम्प मचा था। 30 अक्टूबर को भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की निर्मम हत्या हो गई थी। अमेठी से बस चली तो जायस पहुँची । जायस की हालत बदतर थी, वहाँ तो हत्या-काण्ड को लेकर भूचाल सा आया हुआ था। अजीब दहशत गर्दी और भयानक वातावरण था। जायस से बस के रायबरेली पहुँचते-पहुँचते हत्या-काण्ड की आग धू-धू कर जलने लगी थी। भयानक हिंसा, आगजनी, लूटपाट। ऐसा उपद्रव कि देखते ही नहीं बन रहा था। जान बचाने के लाले पड़ गए। सारे यात्री जहाँ-तहाँ बदहवास। सभी लोग भूख-प्यास से व्याकुल थे। बच्चे पानी को तरस रहे थे। श्री पुलक चटर्जी डी.एम. से मिले। उन्होंने कहा कि हम आप लोगों को लालगंज रेल्वे स्टेशन भेज सकते है। वहाँ से ट्रेन पकड़कर आप सब कानपुर चले जाइए। दो बजे रात में सभी लोगों को एक दूसरी बस में बैठाया गया। सबेरा होते-होते बस चुन्नीगंज पहुँची। चुन्नीगंज में भारी सन्नाटा। चुन्नीगंज में बस से उतरने के बाद उन्होंने देखा कि न कोई रिक्सा, न कोई कुली, न कहीं कोई आदमी। एक व्यक्ति आया, व्यथित जी से पूछा कहाँ जाना है ? व्यथित जी ने उसे सब बताया।

कोलोनी में सभी को 10 दिवस रहना पड़ा। कर्फ्यू लग गया था। कर्फ्यू खत्म होते ही सभी कानपुर रेल्वे स्टेशन पहुँचे। उस समय व्यथित जी की जेब में मात्र दस रूपए बचे थे। टी.टी.आई. बहुत अच्छा था, उसने बड़ी मदद की । अपने पैसे से सभी का रिजर्वेशन किया। उस समय अहमदाबाद जाने के लिए केवल एक ही रेलगाड़ी साबरमती एक्सप्रेस थी । बहरहाल डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी किसी तरह अहमदाबाद अपने घर पहुँचे।

अपने घर में :

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' की बड़ी पुत्रवधु श्रीमती आशा सिंह ठाकुर का कथन है कि – ''बाबूजी का हृदय विशाल है। सदा कुटुम्ब के प्रति समर्पित रहना और सबके सुख-दु:ख का पूरा-पूरा ध्यान रखना ध्येय रहा, भले कुटुम्बीजनों का स्वार्थ उनसे टकराता रहा तो भी वे अपने सत्य मार्ग से विचलित नहीं हुए, किसी का बुरा करना तो दूर रहा, सोचा तक नहीं। यदि कभी सोचा तो सिर्फ भला करना, भला सुनना ही सोचा। आप सदैव हमें यह दोहा सुनाया करते-

'जो तोको काँटा बोवै, ताहि बोव तू फूल, तो को फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल।'

बाबूजी के प्रतिपल का सान्निध्य,क्रिया कलाप उनके उपदेश हमारे लिए वे आदर्श हैं जो सन्मार्ग से हमे विचलित नहीं होने देते। दैनन्दिन जीवन में बाबू जी से प्राप्त प्रेरणाओं को किसी समय विशेष की सीमा में नहीं बाँध सकती मैं अपने भाग्य और ईश्वर की कृपा की सराहना करते हुए सौभाग्य समझती हूँ जो आप की बहू होने का मुझे गौरव मिला। छिद्रान्वेषण करना या अनावश्यक नाराजगी जताकर प्रताड़ित करना या कराना बहुधा समाज में देखने को मिलता है किन्तु मुझे कभी ऐसा अवसर देखने या सुनने को नहीं मिला है।

बाबूजी का दाम्पत्य जीवन भी मैंने देखा है। इनका दाम्पत्य जीवन हमारे लिए अनुकरणीय रहा। अम्माजी और बाबूजी में किसी बात को लेकर कभी मन मुटाव

नहीं रहा। अम्माजी को वे अपनी प्रेरणा मूर्ति मानते हैं। पति-पत्नि को एक-दूसरे के सदैव सहयोगी के रूप में माना है। अवसर आने पर अम्माजी ने भी मुक्त हृदय से आप का साथ दिया है। घरेलू जीवन में बाबू जी अम्मा जी के कार्यो में तन्मयता से हाथ बँटाते और इसे जीवन का आनन्द समझते।''[1]

अलग अलग दृष्टि :

व्यथित जी की छोटी बहू श्रीमती उर्मिला सिंह ठाकुर का कथन है कि - ''मैं उनकी छोटी बहू हूँ। बाबू जी को मैं काफी दिनों तक साधारण व्यक्ति के रूप में जानती थी। जब बहुत से लोग उनसे साहित्यिक परामर्श करने आते थे तो मैं यह समझती थी की वे सभी या तो विद्यालयीय कार्य से आते हैं अथवा पार्टी के नेता लोग होंगे। एक साहित्यकार के रूप में भी जो मैंने जाना तो साधारण कवि जाना था। जब मैंने देखा कि इनकी रचनाओं पर शोध कार्य हो रहा है। अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। एम. ए. के पाठ्यक्रम में बाबू जी की पुस्तक जब आ गई तब मैने उनके अन्तर में छिपे साहित्यकार को समझा। इस वर्ष डॉ. कृष्णकुमार जो हमारे जेठ हैं अथक परिश्रम से षष्टिपूर्ति कार्यक्रम तैयार किये और बृह्द अभिनन्दन ग्रंथ का सम्पादन किये तब मैने समझा कि बाबू जी एक महान साहित्यकार हैं। मुझे पूरी जानकारी होने के बाद बड़ा गर्व हुआ कि मैं एक इतने बड़े साहित्यकार की पुत्रवधू हूँ।

बाबू जी के ही पुरूषार्थ और उनकी दूरदर्शी गहन दृष्टि का ही प्रभाव है कि शान्ति निकेतन संकुल आज एक विशाल वट वृक्ष के रूप में गुजरात अहमदबाद की धरती पर फैला हुआ अपनी शीतल छाया का आह्लाद देकर हमें सब तरह से सुखी सम्पन्न बना रहा है। बाबू जी की प्रेरणा से ही मैंने एम. ए.,बी.एड.उत्तीर्ण कर जीवन यापन का एक सबल सम्बल प्राप्त कर लिया है। बाबू जी का हृदय पट अत्यन्त विशाल एवं शान्त है। तन-मन की निर्मलता, संयम, सादगी एवं अदम्य पुरुषार्थ ही उनकी महानता का मूल मंत्र है। उनके अन्दर आलस्य व प्रमाद का कहीं

नामोनिशान नहीं है। उनका जीवन निर्व्यसनी है। वे सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति हैं।''[2]

एक और रूप :

व्यथितजी की पुत्री निर्मला सिंह जे ठाकुर का कथन है कि – ''सन् 1969 का वह समय जब मैं कक्षा 9 में पंकज विद्यालय हाईस्कूल गुलबाई टेकरा पढ़ने जाया करती थी। एक दिन स्कूल से छूटकर हम लोग घर आ रहे थे। बस में भयंकर पत्थरों की वर्षा होने लगी, यहीं आस्टोडिया से रायपुर के बीच में हम लोग हक्के-बक्के हो गए, डर लगने लगा आगे क्या होगा ऐसा क्यों हो रहा है? कब तक चलेगा सारे मुसाफिर परेशान अचानक यह मुसीबत कैसे फाट पड़ी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। इतने में एक बुजुर्ग ने बताया कि बच्चों दंगा हो रहा है, सिर नीचे झुका लो पत्थर कहीं भी लग सकता है। हम लोगों ने सिर झुका लिया कोई चोट नहीं आई। किसी प्रकार पत्थरों की मार से बचती हुई बस आगे को निकल गई। बड़ा बहादुर ड्राइवर था। हम सभी को आशा का सूरज दिखाई देने लगा घर पहुँच कर राहत हुई। दंगा हिन्दू-मुस्लिम दोनों का था। कारण गाय को मार डालने से पैदा हुआ था। दंगा खूब भड़क चुका था। एक दुसरे को फूटी आँखों से भी नहीं देख पाते थे। जहाँ देखो वहीं मारो काटो की आवाजें गूँज रही थीं। चारों तरफ आग ही आग दिखाई देती थी बड़ा भयानक दृश्य था। धुआँ ही धुआँ था कुछ साफ नजर नहीं आता था। आंतक था, लूट-पाट, जोर-जबर्दस्ती थी। खुली गटरें मानों श्मसान थीं। लहू-लुहान मनुष्यों को मारकर गटर भर दी जाती थी। काफी दिनो तक यह सिलसिला चला था। पुलिस के बस की बात नहीं थी। बाहर से मिलिट्री बुलवाई गई। जवानों ने परिस्थिति पर अन्त में काबू पा ही लिया। कर्फ्यु लग चुकी थी। तीन-चार दिनो तक घर से बाहर निकलना भारी हो रहा था। कर्फ्यू लगने से सबका आना जाना बन्द था। ''देखो वहाँ ठार करो'' का आदेश था मिलिट्री मैंने एकल-दोकल को पाने पर दौड़ा-दौड़ा कर मारते थे, नाक से लाईन बनवाते थे।

एक हाथ से साइकल उठवाते वगैरह सजा करते थे।

बाबूजी ने कुछ मित्रों को मिलाकर कमिश्नर से परमीशन लेकर शांति सेना तैयार की और वे शांति सैनिक के रूप में विनोबा भावे के आदर्शो पर चल रहे थे। जुगतराय दवे, विनुभाई अमीन, उषा बहन, हरीशभाई, सावित्री बहन वगैरह सक्रिय कार्यकर्ता थे।

सैनिक सारा दिन हर मोहल्लों, चालियों, झोपड़पट्टियों में जाते थे उन्हें हर तरह से समझाते, दंगा न करने के लिए प्रोत्साहित करते, लोगों की सुनते, अपनी कहते, उनके दु:खों को बाँटते जो कुछ बन पड़ता उन्हें देते। लोगों की तकलीफें समझते उन्हें सरकारी अनाज दूध वगैरह दिलवाकर मदद करते, बड़ी परेशानियाँ झेलते थे।

पीली टोपी, पीला वेश, सफेद खादी का कुर्ता, पायजामा, शांति सैनिक का बेल्ट लगाकर जब जाते थे तो लोंगो की तरफ से सचमुच देवता जैसी आवभगत होती थी। सभी खुलकर मिलते थे अपने नुकशान के बारे में सिफारिस करने को कहते शांति सैनिक भगवान के दूत मालूम होते थे। सारा खर्च बाबू जी उठाते थे। उन्हें बड़ा आनंद आता था। वे अम्मा को भी समझाते, 'यह सची सेवा है' सेवाभावी लोगों की सेवा करने का हमें सुअवसर मिला है। **'मानव सेवा ही प्रभु सेवा है।'** बाबूजी सबके बीच जाते उनकी तकलीफे सुनते समझते सरकार के समक्ष जोरों से पेश करते और निराकरण लाकर ही दम लेते थे।

बाबू जी की वाणी में सरस्वती का वास है। उनके विचार समाज में क्रान्ति लाने के हैं। वे शुरू से ही समता विचार धारा के हैं। कभी भी किसी के घर जाने या खान पान में विचार-भेद नहीं रखते थे।''[3]

साधना का पथिक :

कु. तेजल सिंह का कथन है कि – ''व्यथित शान्ति साधना केन्द्र से लगा

विक्रमपुर गाँव है, जिसमें बाबा का अपना पुस्तैनी मकान है। विक्रमपुर के निवास का नाम बाबा जी ने **'व्यथित शान्ति साधना केन्द्र'** रखा है। यहाँ पर बाबा जी ने एक भव्य और दिव्य मन्दिर का भी निर्माण कराया है। इस मन्दिर का निर्माण स्थानीय राजगीर से करवाया है। स्थानीय मूर्तिकार से बाबा जी ने इस मन्दिर की मूर्तियों का भी निर्माण कराया है। ध्यातव्य है कि इस मन्दिर में चाहे जिस देवता की पूजा की जाय सबकी मूर्ति स्थानीय मूर्तिकार ने बनाई है। एक दिन मैंने बाबा सें पूछा था कि बाबा आप तो मन्दिर में जाकर पूजा पाठ करते ही नहीं तो कौन सी साधना कब आप करते हैं? कौन सी साधना है जिसका नाम आपने 'व्यथित शान्ति साधना केन्द्र' नाम दिया है। बाबा ने उत्तर दिया कि बेटा ! मैं दिखावे की बात और कार्य नहीं करता। मैं मन्दिर नहीं जाता तब भी मेरी साधना निरन्तर अहर्निशि चलती रहती है। मेरी साधना का रहस्य मात्र अन्त:करण की शुद्धि तक ही सीमित है।''[4]

वे अविस्मरणीय प्रसंग :

डॉ. कोमलशास्त्री का कथन है कि – ''व्यथित जी की पारखी दृष्टि, पक्वानुभव और हृदय की तरलता एवं निरंभिमानता उनके निश्चल व्यक्तित्व का विनियोग दिखती है। प्राणि मात्र के प्रति व्यथित जी का हृदय द्वारा सदैव खुला रहता है। यों तो मेरे मानस पटल पर उनके अनेक चित्र अंकित है।

व्यथित जी के परमाराध्य श्री हनुमान जी हैं। इष्ट देव का अमृत वर्षण उन पर सदैव होता रहता है। शनिवार 10 अप्रैल 1999 ई. को चित्रकूट अवधी महोत्सव के कार्यक्रम में परमादरणीय व्यथित जी, डॉ. प्रदीप जी, रामबहादुर मिश्र तथा मैं सम्मिलित हुआ। कामद गिरि के निकट स्वर्गाश्रम पीली कोठी में ठहरने की उत्तम व्यवस्था थी। निश्चय हुआ कि रविवार 11 अप्रैल की प्रात: कामद गिरि की परिक्रमा की जाएगी। हम लोग प्रात: नित्यक्रियोपरांत स्नानादि से निवृत हो चलने की मुद्रा में कमरे से बाहर ही निकलने वाले थे कि अपने ही एक मित्र के वाग्वाणों से मेरा

हृदय विंध गया। नेत्र छलछला आए। मेरा दोष यह था कि गत रात्रि के कवि सम्मेलन में संचालक के रूप में मैने उन्हें बहु विशेषणों से अलंकृत करने में चूक की थी। बैचेनी में मैंने परिक्रमा न करने का निश्चय कर लिया। श्रद्धेय व्यथित जी ने मेरी मनोदशा को देखकर मुझे स्नेह के साथ बाहों में भर लिया। मेरे मनस्ताप तो दूर करते हुए उन्होंने परिक्रमा के लिए साथ-साथ चलने को मुझे मजबूर कर दिया। मेरे लिए उनके स्नेह भरे वाक्य आदेश की भाँति पालनीय लगे।''[5]

मधुर स्मरण :

व्यथित जी के मित्र मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु' का कथन है कि –''बात अक्टूबर 1997 की है। उन दिनों सुलतानपुर की साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधयों के केन्द्र बिन्दु दिव्या समिति के संस्थापकाध्यक्ष स्व. बाबू धनञ्जय सिंह जी एडवोकेट जीवित थे। प्रतिवर्ष अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में वे द्वि दिवसीय **'लोक स्वर महोत्सव'** का भव्य आयोजन किया करते थे, जिसमें देश के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार व लोक गायक सम्मिलित हुआ करते थे। उस दिन भी मैं खुर्शीद क्लब सुलतानपुर के प्राङ्गण में आयोजित उस विशाल कार्यक्रम में अपने कवि मित्रों डॉ. सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' डॉ. कोमल शास्त्री और डॉ. आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' के साथ मंच पर उपस्थित था। लगभग 2 बजे अपराहन एक देदीप्यमान व्यक्ति खादी परिधान में मंच पर प्रकट हुआ। आयोजक गण डॉ. जयसिंह 'व्यथित' को पाकर पुलकित हो गए। मुझको उनका स्नेहाशीष प्राप्त हुआ। थोड़ी देर बाद वे मेरा हाथ पकड़ कर मंच के पीछे ले गए। परिवारजनों का कुशल क्षेम पूछते हुए उन्होंने मुझसे कहा कि 'जटायु' जी आप लोगों को मेरे घर चलना है, वहीं रात्रि में गोष्ठि होगी तथा 'रैन बसेरा' के प्रचार-प्रसार पर चर्चा होगी। उनका आग्रह मेरे लिए आदेश होता है।

हम लोग पारस्परिक विचार-विमर्श में संलग्न हो गए। अचानक 'व्यथित'जी को कुछ याद आया। उन्होंने मन्दिर के पुजारी पं. जगदीश प्रसाद चौबे से आदर

पूर्वक पूछा 'पण्डितजी, आपकी नील गाय कैसी है ? उसके बछड़े का स्वास्थ कैसा है? कितना दूध देती है? आदि। पहले तो मैंने समझा कि पुजारी जी की गाय का नाम 'नीलगाय' होगा किन्तु बात-चीत में पता चला कि चौबेजी ने गाय नहीं 'नीलगाय' पाल रखी है जो दैववश बचपन से ही उनकी स्नेहभाजन है। उस नीलगाय ने उनके खूँटे पर बच्चा दिया था। वे रोज उस 'नीलगाय' का दूध दुहते थे और गाय-भैंस के दूध की तरह ही उसका उपयोग करते थे। बात बड़ी विचित्र भी थी और दिलचस्प भी।''[6]

सहयोगी रूप में :

गोमती प्रसाद यादव का कथन है कि – ''धीर-गंभीर एक सन्त की भाँति दृष्टि गोचर होने वाले डॉ. व्यथित का व्यक्तित्व एक कर्मयोगी की भाँति है। ये विनम्रता की साक्षात् मूर्ति हैं। अभिमान अहंकार, लालच जैसी बलाएँ इन्हें छू तक नहीं गई हैं, बड़ों के प्रति आदर, समवयस्कों के प्रति प्रेम और छोटों के प्रति स्नेह इनके भव्य मुखमंडल की विशेषता है। इनके स्वभाव में पृथ्वी की सहनशीलता, जलधि की गंभीरता एवं हिमालय की अडिगता का सुन्दर सामंजस्य है। ये एक सच्चे सन्त हैं। जिस प्रकार एक संत को जीवन की कोई मोह-माया बाँध नहीं पाती ठीक उसी प्रकार व्यथितजी भी उसी पथ के पथिक हैं जिन्हें न तो कभी अर्थ कामना और न ही यश कामना की मोह-माया ने अपने जाल फाँस में फंसा पाया है। इनका जीवन उस शांत नदी के प्रवाह की भाँति है, जिसने लोगों को कुछ न कुछ प्रदान किया है। लेने की चेष्टा कभी नहीं की।

बात उस समय की है जब मैं एक प्रतिष्ठित मील में नौकरी किया करता था। समय जाते देर न लगी और एक दिन वह भी आया कि 10 वर्ष के अन्तराल के बाद मिलें प्राय: क्रमश: बन्द होने लगीं और एक दिन मेरा भी क्रम आया मैं क्या करता हाँ इतना अच्छा हुआ था कि मैंने चालू नौकरी में ही अपना अध्ययन जारी रखकर सन् 1988-89 में बी.एड. हो गया था। मैं लाचार विवश होकर कुछ सोच

ही नहीं पा रहा था कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ किसे पकडूँ कि वह मुझे किसी रास्ते से लगा दे ताकि मेरे जीवन की नैया हेम खेम पार लग सके।

न रात को नींद न दिन को चैन, जो जहाँ कहता वहाँ मैं दोड़ जाता कि शायद कहीं कोई आशा की किरण ही नजर आ जाए। इधर घर का बोझ, पिताश्री अकेले कमाने वाले, बच्चों की पढाई-लिखाई की चिन्ता, मुझे कुछ भी सुझ नहीं रहा था कि मैं क्या करूँ ? एक दिन की बात है कि मैं इसी उधेड़ बुन में नागरवेल हनुमान रोड से जा रहा था कि सहसा राम अवलम्ब यादव की आवाज मेरे कानों में गूँजी- गोमती प्रसाद जी कहाँ चले जा रहे हो कि देखते हुए भी नही देख रहे हो। तब मेरा ध्यान टूटा और मैं रूक गया। कुशल मंगल के पश्चात मैंने अपनी आपबीती उनको सुनाई तो उन्होंने कहा कि ठीक है बन्धु मैं गोपीनाथ यादव से बात चलाता हूँ शायद उनकी नजर में शांति निकेतन विद्यालय में अध्यापक की जगह है। बस फिर क्या था डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। मैं गोपीनाथ जी के साथ एक बीहड़ ऊँचाई वाले भाग ओढ़व में जा पहुँचा। वहाँ जाते ही क्या देखता हूँ कि एक भव्य मुख मंडल, लम्बी दाढ़ी, लम्बी नासिका, प्रदीप्त आँखें, आँखों पर चश्मा एवं गंभीरता युक्त मधुर मुस्कान वाले महान साहित्य सेवी विराजमान हैं, जिन्हें देखकर मैं दंग रह गया क्योंकि पहुँचते ही उन्होंने ऐसा आदर भाव किया, लगा मानो हम पहले से ही परिचित हों। तब यादव जी ने डॉ. व्यथित जी के विषय में सारा इतिहास कह सुनाया की ये सर्वोदयवादी सत्यनिष्ठ तथा कर्म के पुजारी हैं। मुझे लगा कि मेरा दु:ख उनसे देखा न गया, मेरी अन्तर्वेदना को सुन-समझकर उन्होंने मुझे एक नया जीवन प्रदान किया जिसका मैं आज भी ऋणी हूँ।''[7]

एक साहित्यिक यात्रा :

आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' का कथन है कि –''अवधी साहित्य संस्था का कार्यक्रम चित्रकूट में आयोजित था । दो दिन का समय हम वहाँ बिताकर कामदगिरि की प्रिक्रमा किए। अब यहाँ से हमारा कार्यक्रम राजापुर जनपद गोस्वामी तुलसीदास

की तथाकथित जन्मस्थली पर जाने का था। व्यथित जी की मारुति कार से हम डॉ. कोमलशास्त्री के साथ उस दिशा में चले पड़े। धीरे धीरे लोगों की सहायता से हम स्थली की ओर पहुँचे। सर्वप्रथम कालिन्दी के सुरम्य तट की ओर से गाड़ी को घुमाकर बगल में रामपाल ने लगा लिया। हम उतर कर पक्के घाट की ओर पढ़ चले। यहाँ से यमुना का जल बहुत नीचे दिख रहा था। हाँ रही होंगी लगभग 100 सीढ़ियाँ पानी तक पहुँचने के लिए। पचासों लोग घाट पर स्नान कर रहे थे। उनमें से एक व्यक्ति गोरा रंग, कद लगभग 5'.6'', शिक्षित, आधी धोती पहने, आधी ओढ़े हाथों में एक लोटा जमुना जल लिए आगे बढ़ता चला आ रहा था। उसके मुँह से मानस की चौपाई बड़े अच्छे आरोहावरोह के साथ प्रस्फुटित हो रही थी।

वह युवक आगे बढ़ता चला आ रहा था। व्यथित जी को देख कर उसकी गति में विराम लगा। वह आँखें अर्ध बन्द किए पैरों पर जल को चढ़ा दिया। फिर दण्डवत् प्रणाम कर पैर कीं मिट्टी को उँगलियों से अंजन लगाया। चौपाई और मंत्रोचार के बीच बीच में पा गया ! पा गया ! भी कहते जा रहा था । कुछ देर तक नाच-नाच कर वह युवक चौपइयों का पाठ करता रहा। व्यथित जी अपने हाथों से उसे उठाने का प्रयास करते परंतु वह उठे क्यों ? अन्त में हम लोगों के साथ-साथ लगभग 1 घंटे उस स्थली पर इधर उधर गया। हम लोगों ने मानस की तुलसी के हाथों से लिखी पाण्डुलिपि के दर्शन किए। वह युवक भी साथ में लगा रहा।

पूछने से अवगत हुआ कि वह युवक एम. ए., पी-एच.डी. था। वह किसी राजकीय महाविद्यालय में अध्यापक था। 'व्यथित'जी ने उस भक्त को अपना साहित्य पढ़ने को दिया। बड़े प्रेम से उसने उनका साहित्य स्वीकार किया । पुन:दण्डवत् प्रणाम व नमन वन्दन कर चौपाइयों का परायण करता रहा। हम मारुजी में सवार हो आगे चले आए। वह स्तब्ध अपलक गाड़ी को खड़ा देखता रहा। हम लोग भी उसकी भक्ति भावना की चर्चा करते हुए चले जा रहे थे। आज भी वह शालीन व्यकितत्व आँखों के सामने नाचता रहता है। उसे तो अपनी खोज

की वस्तु मिल गई परन्तु हम आज तक उसे पा न सके।''[8]

व्यथित जी के विभिन्न रूप :

अश्विनीकुमार पाण्डेय का कथन है कि – ''आज से लगभग 30 वर्ष पहले जयसिंह 'व्यथित' जी से प्रथम साक्षात्कार हुआ। मैं विज्ञान प्रवाह का विद्यार्थी था। सामान्य औपाचारिक बातों से मात्र इतना मालूम हुआ कि वे मूलतः शिक्षक हैं। अहमदाबाद शहर से दूर जिन ग्रामीण क्षेत्रो में शिक्षा का अभाव है, ज्ञान की किरण जिन कोनों का छू तक नहीं पाई है ऐसे विस्तारों में ज्ञान का दीपक जलाकर अज्ञान का अँधेरा मिटाने का प्रयास कर रहे हैं। खादी-सा कुरता-पायजामा, बस यात्रा की थकान, पसीने से नहाया चेहरा किन्तु वाणी में मधुरता अपने सर्वोदयवादी विचारों को प्रसारित करने तथा क्रियान्वित करने की चमक चेहरे पर लिए। बस इतना ही याद है।

शून्य में से सृजन करनेवाले व्यक्तित्व श्री व्यथित जी नई ऊर्जा के प्रेरणा स्त्रोत हैं। परिश्रम एवं बुद्धिचातुर्य की बदौलत सरस्वती के साथ-साथ लक्ष्मी की भी उन पर कृपा हुई, किन्तु उनकी सहजता, सौम्यता एवं मधुरता में रंचमात्र अन्तर नहीं पड़ा, जैसा सामान्य लोगों में पड़ जाता है। वे जिनता ही सिद्धियों-प्रसिद्धियों के मीठे फलों से लदे उतनी हीं उनकी शाखाएँ नमन भाव से माँ धरती की ओर झुकती गयी। अहम् की अकड़ से तनकर चलने का दुर्गुण उनमें नाम मात्र भी नहीं आ पाया।

एक बात जो सर्वोपरी है वह यह कि वे जब भी मिले बड़े ही प्रेम से तथा वात्सल्यभाव से, साथ ही और कुछ अच्छा कर सकने, करते रहने की प्रेरणा और आशीर्वाद देते हुए। हृदय में अपना अभिन्न स्थान बना लेनेवाले आदरणीय 'व्यथित' जी के बारे में उद्‌गारों को व्यक्त करने के लिए शब्दों की कमी पड़ जाती है। ईश्वर से प्रार्थना है कि उन्हें स्वस्थ रखकर अपनी वाटिका को उनके स्नेह पुष्प से सुगन्धित रखें तथा समाज एवं देश को उनके विचारों तथा कार्यों से लाभान्वित

करायें। अपनी इन काव्य पंक्तियों के साथ-

जिंदगी के पृष्ठ पर कोई कहानी छोड़ जा!
मील का पत्थर बने ऐसी निशानी छोड़ जा!!
दब रही गुमनामियों के स्याह धब्बों के तले!
सुख स्याही भर कलम में, कद्रदानी छोड़ जा !!''[9]

गहरी दृष्टि :

व्यथित जी के मित्र देवनारायण सूर्यदेव राय का कथन है कि ''सारश्वत श्री जयसिंह बहादुर सिंह 'व्यथित' को अहमदाबाद शहर में एक अच्छी शैक्षणिक संस्था प्रारंभ करने की इच्छा हुई। इसके परिणाम स्वरूप श्री व्यथित जी 'कड़जोदरा' से मुक्त होकर अहमदाबाद आए। सर्वोदय विचार से प्रभावित होकर ओढ़व के वीरान भाग में मोमाई नगर में पिछड़ों की सेवा हेतु शान्ति निकेतन प्राथमिक शाला, शान्ति निकेतन माध्यमिक, उच्च माध्यामिक शाला की स्थापना की। अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते-करते अपनी सूझ-बूझ परक सरस्वती की सेवा से प्रभावित इन संस्थाओं के साथ-साथ गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अंग्रेजी प्राथमिक शाला, एक मासिक पत्रिका 'रैन बसेरा' को प्रारंभ किया। जो निश्चित समय पर निरन्तर प्रकाशित हो रही है। यही नहीं हिन्दी, गुजराती माध्यमिक शाला में चलने वाली नक्शापोथी, भूगोलपोथी तथा मार्गदर्शिकायें नियमित शालाओं में पहुँच रही हैं।

जब डॉ. जयसिंह बहादुर सिंह 'व्यथित' के जीवन तथा कृतियों पर विचार करता हूँ तो भगवान क़बीर की इस पंक्ति का सहज स्मरण हो आता है -

'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।'

साथ साथ स्वामीश्री शिवानंदजी के वाक्य स्मरण हो आते हैं-

"Pain is the eyes opener.

Pain is the silent teacher.

pain is out real master.''[10]

<u>यात्रा संस्मरण :</u>

'व्यथित'जी के मित्र डॉ. कोमल शास्त्री का कथन है कि – ''सीतापुर की धरती साहित्य के लिए वरदान सिद्ध है। यहाँ अनेक साहित्यकारों की साधना फलीभूत हुई है। कविवर नरोत्तम दास, सरयू पंडित, बाबा रघुनाथ दास, रामसनेही, हरिदयालु सिंह, अनूपशर्मा, पं. कृष्ण बिहारी मिश्र, बंशीधरशुक्ल-वलभद्र 'पढ़ीस', उमा प्रसाद बाजपेयी 'सुजान' उमादत्त सारस्वत, चतुर्भज शर्मा आदि इसी धरती की साहित्यिक देन हैं। वर्तमान भी अति गौरवपूर्ण है। पं श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, पं. सत्यधर शुक्ल, लवकुश दीक्षित आदि साहित्य जगत में वर्चस्व बनाए हुए हैं। उमा प्रसाद बाजपेयी के उपनाम से सीतापुर में सुजान साहित्य परिषद स्थापित है। परिषद के महामंत्री हैं, सुजान जी के सुपुत्र कवि श्री पं. जागेश्वर वाजपेयी जो साहित्य के लिए समर्पित हैं।

सुजान साहित्य परिषद का वार्षिक साहित्य समागम कार्यक्रम 29 जनवरी 1999 ई. से 31 जनवरी के मध्य सम्पन्न हुआ। इस त्रि-दिवसीय कार्यक्रम में देश के विभिन्न प्रान्तों से अनेक साहित्यकार आमंत्रित थे। सुलतानपुर जिले की उर्वरा धरती के महान साहित्यकार एवं समाज सेवी, कर्मयोगी डॉ. जयसिंह 'व्यथित' इसी जनपद के अवधी भाषा के प्रतिमान डॉ. आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' तथा इन पंक्तियों के लेखक की सारस्वतत्रयी सीतापुर के लिए दिनांक 29 जनवरी को सुलतानपुर मुख्यालय से 12 बजे मध्याह्न रवाना हुई।

मधुप जी द्वारा दिए गए, एक दिशा निर्देशक के साथ हम लोग गर्वनमेन्ट कालेज पहुँचे जहाँ साहित्यकारों का जमावड़ा था। पं. जागेश्वर बाजपेयी सुनकर तुरन्त दौड़े आए। मैंने देखा-वाजपेयी जी साठ वर्ष की आयु से अधिक और दुबली काया के होते हुए भी नौजवानों के कान काटते हैं। हँसमुख मिजाज, निश्छल,

सादगीपूर्ण, विद्युत की भांति फुर्तीले हैं। इस कार्यक्रम के दौरान एक क्षण भी मैंने उन्हें बैठते हुए नहीं देखा। उनकी बेदाग निष्ठा रोम-रोम से टपक रही थी। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. व्यथितने की। अपनी अध्यक्षीय भाषण में डॉ. व्यथित जी ने कवियों को दलगत राजनीति से उबर कर कविता को फँतासी से मुक्त करने का आह्वाहन करते हुए राष्ट्रीय चेतना से अभिभूत शाश्वत कालजयी रचनाओं के साथ समाजोद्धार के लिए आगे आने को कहा।

30 जनवरी 1999 को प्रात: हम लोग डॉ. गणेशदत स्तरस्वत से मिलने उनके निवास पर एक स्थानीय कवि के सहयोग से पहुँच गए। हम लोग साधना कक्ष में बैठे। सुदर्शन सारस्वत जी का साधना कक्ष किसी मनीषी काव्य-साधक का कक्ष होने की स्वयं घोषणा करता है। सलीके से सजी हुई अगणित पुस्तकें, प्राप्त सम्मानों की लम्बी शृंखला, बैठने के लिए सोफा, कुर्सियाँ और इनसे अलग साधक का साधना-शयन मंच। सब कुछ बहुत सादा और उदात्त। लम्बी कोट पहने आँखों पर चश्मा लगाए सारस्वत जी हम लोगों को पाकर अभिभूत थे और हम इन्हें पाकर। साहित्य साधना आपको विरासत से मिली है।

30 जनवरी 1999 ई. सुजान साहित्य परिषद का दिन में कार्यक्रम था। **'दलित बनाम ललित साहित्य'** तथा हिन्दी के उत्थान में अहिन्दी साहित्यकारों का योगदान पर बहस कार्यक्रम को पीठिका प्रदान की कुमार दिनेश प्रियमान (उन्नाँव) ने। कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। मुझे तो वर्तमान संम्पन्न हुआ। मुझे तो वर्तमान संदर्भों में तथाकथित दलित साहित्यकारों तथा जनवादी साहित्यकारों की भूमिकाएँ संदिग्ध लगती है। यक्ष प्रश्न खड़े होते हैं। बहस होनी चाहिए। अच्छी बात है किन्तु साहित्यकार को वाद विमुक्त, संकीर्णता रहित साधारण से ऊपर असाधारण होना चाहए। परवर्तीय या अन्य साहित्यकारों की ढ़ेर सारी रचनाएँ और इनका साहित्य क्या दलितों, पीड़ितों की पीड़ा से अभिभूत नहीं है ? क्या उनकी सार्थकता को समझने का पूरा प्रयास हुआ है ? क्या उनकी सार्थकता को समझने का पूरा प्रयास

हुआ है? क्या उन्होंने शोषण के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई है? क्या वे साहित्यकार जनवादी न होकर पशुवादी थे या हैं? क्या वे शाश्वत कालजयी साहित्य अव्यवहारिक एवं समाज विरोधी हैं ? क्या उनमें शिवेतर-क्षय-क्षमता नहीं है ? क्या दलित की पीड़ा दलित ही हृदयंगम कर सकता है और लिख सकता है? दलितान्य लेखक कवि होते हैं ? इत्यादि अनेकानेक प्रश्न हैं। आज देश की राजनीति के साथ सारा साहित्यक पर्यावरण कुछ तथाकथित साहित्यकारों के षडयंत्रों का शिकार होता जा रहा है। यह अलम्बरदारी और झंडा फहराने की कोशिश है, जो राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। वास्तविक साहित्यकारों को कलम की इस साज़िश से खबरदार रहना चाहिए।

साहित्यिक ठेकेदारी को नहीं चलने देना चाहिए। मैं समझता हूँ किसी देश या भाषा का साहित्य देश-काल स्थितियों के अनुसार जनवादिता का पक्षधर होता है और अन्याय के विरुद्ध ही संघर्ष करता है। बवन्दर उठाने वालों से मेरा अनुरोध है कि वे कौतूहल त्यागकर साहित्य प्रयोजनों को भली भाँति देखें तो उनकी आँखें शायद खुल जाएँ। हो सकता है कि उन्हें पता हो जाय कि साहित्य किसी वर्ग विशेष का नहीं अपितु समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। समूची मानवता की रक्षा करता है और **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** को आख्यायित करता है। सृजन सृष्टि के लिए सत्य, शिव, सुन्दर से समन्वित होना चाहिए।

31 जनवरी 1999 को प्रात: नित्यक्रियोपरान्त, पद्मा बहन से हम लोगों ने कृतज्ञ भाव से चलने की इच्छा प्रकट की। उनका अनुरोध हुआ- हम लोग चाय-पीकर ही निकलें। देर रात तकरीबन नौ बजे बारबंकी पहुँचे। 'विभु' ने महमदाबाद में ही साथ छोड़ दिया था। डॉ. प्रदीप जी ने एक सुझाव रखा-अच्छा होगा हम लोग भोजन कर लें क्योंकि श्रीमती मधु का स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं, काफी विलम्ब हो गया है। अतएव उन्हें परेशानी में डालना ठीक नहीं होगा। इसका मैंने तथा 'व्यथित'जी ने समर्थन किया। एक साधारण से ढाबे में हम लोगों ने सात्विक

भोजन किया। ढाबा ब्राह्मण का था, मधुप जी हम लोगों को देखते ही गद् गद् हो गए। औपचारिकता के बाद जब भोजन की बात आयी तो सब सुनकर वे बहुत क्षुब्ध हुए। यात्रा वृतान्त बताते हुए हम लोग साहित्यिक वातावरण से घिर गए। मधुप जी का साधना-कक्ष अलमारियों से घिरा, एक छोटा तख्त उस पर कुछ पुस्तकें और पत्र पास में डबल बेड। मधुजी का प्रकाशित-अप्रकाशित ढेर सारा साहित्य और उनकी मजेदार बेबाक बातें मन को लुभाती रहीं काफी देर तक पद्म श्री (स्व.) मृगेश जी पर उन्होंने चर्चा की।''[11]

व्यथित जी की व्यथाएँ :

'व्यथित'जी के सहशिक्षक शंकरभाई बी. चौहाण का कथन है कि –''डॉ. जयसिंह जी से प्रथम मुलाकात 1963 में उन्नति विद्यालय, पालड़ी, अहमदाबाद में उनके साथ एक सहशिक्षक के नाते हुई। बहुत सरल, बाचाल, अनुशासनप्रिय और कर्तव्यनिष्ठा से मैं प्रभावित हुआ था। छात्रों के प्रति प्रेम विषय की गहराई और विषय को सरलता से समझाना उनकी अपनी एक शैली थी, जिससे छात्रों के हृदय में अपना स्थान बनाए थे।

वह खेल के भी बड़े शौकीन थे। मैं एक व्यायाम शिक्षक होने के नाते से खेल के प्रति जो उनका आदर था उसकी जानकारी मुझको है। छात्रों को इसमें अधिक से अधिक रस प्रदान करने के लिए उनके साथ और शिक्षकों के साथ कबड्डी और वॉलिबाल जैसे खेल खेलते थे, यह उनकी सरलता का अनुपम उदाहरण है। उस समय मैं आपके प्रेम में डुबकी लगाने लगता था। शिक्षक खण्ड और विद्यार्थियों के सभाखंड में उनका एक और रूप कवि और साहित्यकार का देखा और उसका अनुभव कर उनके प्रति आदर और प्रेम के बहाव में बहने लगा। एक क्रांतिकारी का भी गुण उनमें ठूँस-ठूँस कर भरा हुआ था। जहाँ न्याय और किसी भी सम्मान का हनन होता, उनका खून खौल उठता और उसके प्रति अपना आक्रोश शिष्टता और संयमपूर्ण ढंग से प्रकट कर सामने वाले को मात करने की उनमें ईश्वर ने शक्ति दी

थी।

मेरा एक सरकारी कर्मी के नाते तबादला हुआ और मैं उनसे प्रत्यक्ष रूप से अलग हुआ लेकिन अप्रत्यक्ष रूप और हृदय से एक मित्र के रूप में उनका स्थान बना हुआ रहा और उसी के लगाव में फिर मेरी उनसे एक लंबे अरसे बाद मुलाकात हुई। तब वे अपने सिद्धांतों और शिक्षण के प्रति चाह और समाज सेवा की लगन क्रियान्वित करने के लिए अपनी एक संस्था बना चुके थे और उसका नामकरण भी अपने स्वभाव, सिद्धांत और प्रेम के अनुरूप ही किया था। अपनी संस्था का नाम **'शांति निकेतन विद्यालय'** रखा था। आज वही संस्था फूल फल के एक बट वृक्ष बन ओढ़व में तीन संस्था बना चुकी है। 'सहयोग विद्यालय,' 'सन फ्लावर इंग्लिश स्कूल' और 'गुजरात हिन्दी विद्यापीठ'। अपने दोनों सुपुत्रों को भी अपने संस्कार से सींचकर ऐसे भगीरथ कार्य में जोत, उस बगीचे को कुसुमों की सुंगध फैलाने में सहायता करे वैसी प्रार्थना करना एक मित्र का कर्तव्य है।''[12]

एक विप्ल संस्मरण :

सुभाष 'ऋतुज' का कथन है कि–'' सन् 1996 ई. की बात है वर्षा ऋतु के दिन थे। मेरी आँखें भी कुछ-कुछ नमीं थीं, नमी का कारण रोजी-रोटी की तलाश में मेरा प्रतिदिन का भटकाव भी था। एक दिन पिताजी को किसी से पता चला कि रायबरेली से 15-20 लड़के अहमदाबाद जा रहे है। वहाँ मेरे एक रिश्तेदार टेलिफोन कारखानें में उत्पादन अधिकारी के पद पर कार्यरत थे। उनके आमंत्रण पर ही उन बेरोजगारों की टोली अहमदाबाद के लिए रवाना होने वाली थी। पिता जी के आदेश पर मैं भी अनमना सा जाने के लिए तैयार हुआ। अनमना इसलिए कि घर से बहुत दूर एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र, अपरिचित शहर में अनजान लोगों के बीच रहने की चुनौती मेरे सामने थी। बहुत हद तक मेरा मातृप्रेम भी मेरी शुरू होने वाली यात्रा में बाधक बन रहा था किन्तु पिता जी के नाराज होने के डर से मुझे अहमदाबाद जाना ही पड़ा।

अहमदाबाद पहुँचते ही टेलीफोन कारखाने में हम सभी बेकारों की थोक के भाव नियुक्ति हो गयी। कारखाने से लगभग 12 किलोमीटर दूर साणंद नामक कस्बे में किराये का एक कमरा लेकर चार अन्य साथियों सहित रहने लगा। चूंकि साहित्य से मुझे बेहद लगाव है इसलिए साथ में अपनी कविताओं की डायरी तथा कुछ पत्रिकाएँ लेकर गया था। उन्हीं पत्रिकाओं में 'रैन बसेरा' भी थी, जो अहमदाबाद से ही निकलती है। एक दिन बाबूजी से मिलने की इच्छा हुई, पता पत्रिका में मिल गया। ओढ़व बस स्टैण्ट से पूँछताछ करता हुआ कुछ क्षणों में ही बाबूजी द्वारा संचालित गुजरात हिन्दी विद्यापीठ भी पहुँच गया।

'बाबूजी' यह अपनत्व पूर्ण सम्बोधन मुझे विद्यापीठ के पदाधिकारियों, या यूँ कहूँ कि बाबूजी के शुभचिन्तकों से मिला था। विद्यापीठ पहुँचने पर सबसे पहले मेरी भेंट बाबूजी के बड़े लड़के कृष्ण कुमार ठाकुर जी से हुई। वही विद्यापीठ तथा एक इण्टरमीडिएट कॉलेज के प्रशासक थे। उनकी ओर से सादर मेरे अतिथ्य, सत्कार की औपचारिकता पूरी की गयी। उसके पश्चात् वही बाबूजी से मिलवाने के लिए मुझे घर तक छोड़ने गये। बाबूजी के दर्शन का पहला अवसर मुझे वहीं मिला था।

जब मैंने अपना परिचय देकर उनके चरण छूने चाहे तब उन्होंने मुझे अपने हृदय से ऐसे लगा लिया था, मानों अपने वात्सल्य के समूचे सागर को ही मेरे जीवन में उड़ेल देना चाहते थे। उस समय मैं उनके विराट व्यक्तित्व तथा कृतित्व को एकाकार होते देख रहा था। उसके पश्चात पूर्ण परिचय का एक लम्बा सिलसिला शुरू हुआ तो पता चला कि बाबूजी के पूर्वज मेरे पड़ोसी जनपद सुलतानपुर के रहने वाले थे। बाबूजी बहुत समृद्ध हैं फिर भी उनमें अमीरी की तनिक भी बू बास देखने को नहीं मिली। बाबूजी के सच्चे साहित्यकार होने के साथ-साथ एक अच्छे इन्सान भी हैं। वह मेरे नाम से पूर्व परिचित थे। क्योंकि उनके द्वारा सम्पादित रैन बसेरा में मेरी रचनाएँ कई बार छप चुकीं थीं। कवि होने के नाते मुझे उनकी

निकटता प्राप्त करने का एक अच्छा अवसर मिल चुका था।

विपरीत परिस्थितियों में मुझे टेलीफोन कारखाने की नौकरी छोड़नी पड़ी। उस समय मेरे पास बाबूजी से सहयोग लेने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं था। मैं अपना बोरी-बिस्तर बाँधकर ओढ़व के लिए रवाना हुआ। इस बार मैं बाबूजी से भारी मन से ही मिल रहा था। वह मेरा उदास चेहरा देखते ही समझ गये कि मैं किसी मुसीबत में हूँ। फिर भी उन्होंने मेरी उदासी का सही कारण जानना चाहा। मैंने उन्हें अपनी स्थिति-परिस्थिति से अवगत कराया तो वह बहुत ही दु:खी हुए। उस समय मैने उनके **'व्यथित'** उपनाम को सार्थक होते देखा था। उन्हें ईश्वर ने सब कुछ दिया है किन्तु दूसरों के कष्टों ने ही उन्हें 'व्यथित' बना दिया है।

दूसरे दिन बाबूजी ने अपने छोटे लड़के वीरेन्द्र सिंह (महासचिव युवक कांग्रेस अहमदाबाद) से मेरे काम धन्धे के लिए बात की तो उन्होंने काम दिलवाने का वादा किया। बाबूजी की बात मानकर मैं उनके भतीजे हरीन्द्र सिंह ठाकुर (कार्यालय मंत्री रैन बसेरा) के साथ वहीं विद्यापीठ में रहने लगा। हरीन्द्र जी मेरे हम उम्र थे इसलिए शीध्र ही मित्रता हो गयी। कभी-कभी बाबूजी स्वयं साहित्यकारों के पत्रों के उत्तर बोलते जाते और मैं उन्हें लिखता जाता। वहाँ का साहित्यिक वातावरण बहुत ही अच्छा था।

बाबूजी ने कोई दूसरी व्यवस्था होने तक 'रैन बसेरा' में मुझे जगह दे दी। किन्तु अपने संकोची स्वभाव के कारण मैं अधिक दिनों तक वहाँ नहीं रुक सका। लगभग बीस दिन मैंने बाबूजी के दुलार की शीतल छाँव में बिताये। एक दिन बाबू जी से रायबरेली वापस आने की अनुमति मांगी तो पहले उन्होंने मना कर दिया। किन्तु मेरी हार्दिक इच्छा जानकार अनचाहे ही वापसी के लिए स्वीकृति दे दी। मेरे आग्रह पर उन्होंने हरीन्द्र जी समेत मेरे साथ एक फोटो भी खिचवाया। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी एक प्रति मुझे भेज दी थी तथा एक अपने पास रख ली थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि मुझे विदा करते समय उन्होंने अपनी लोकप्रिय पुस्तक

'कैकेयी के राम' (खण्ड-काव्य) सस्नेह भेंट की थी। जिसे पढ़कर आज भी मैं बाबू जी के श्रद्धेय व्यक्तित्व तथा कृतित्व के प्रति नत् हो जाता हूँ।

ऐसी महान विभूति का यशमान राष्ट्र की ही नहीं बल्कि विश्व की प्रत्येक लेखनी युगों-युगों तक गाये ऐसी ही मंगल कामना करता हूँ।

शब्द प्रसूनों से करें, हम उनका सम्मान,
बाबूजी का विश्व में, गूँजे नित यशगान।''[13]

अविस्मरणीय प्रसंग :

उषा बहन पंडित का कथन है कि – ''सन् 1979 की बात है जब शिवगंगा आरोग्य केन्द्र का उद्घाटन होने जा रहा था। मैं और सुश्री वर्षा बहन पटेल शाम छः बजे सब सामान टेम्पो में रखकर अहमदाबाद से निकले थे, कड़ी शरदी का मौसम था रास्ते में टेम्पो खराब हो गया मीठाजी के मुवाड़े के पास रूक गया। वर्षा बहन को वही रखकर रात 1:30 बजे मैं जब हाथ में लाठी लेकर पैदल केन्द्र पहुँची तो आपके और परिवार के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। आपने देखा कि दो बहने बड़ी मुश्किल से पहुँच पाई है आप तुरंत हमारे साथ निकल पड़े और गाँव के लोगों की मदद से टेम्पो बाहर निकाला।

दूसरा प्रसंग है कि मेश्वो नदी में बड़ी भयंकर बाढ़ आई थी। अहमदाबाद से श्री विनुभाई और राय साहब मेश्वो नदी में तैरकर केन्द्र में आना चाहते थे। पर बीच में आते ही भयंकर पानी के थपेड़े उन्हें घसीट कर अपने साथ ले जाने लगे बड़ा विकट समय था। कड़ी महेनत के बाद दोनों किनारे पर पहुँचे आप भी यह दृश्य देखकर दौड़ते हुए आए और दोनों को साथ लेकर केन्द्र में पहुँचे तब भी बड़ा साहस का कार्य आप लोगों ने किया था। इसी लिए तो लिखा है-

न राजा रहेगा न राजसत्ता रहेगी, यह माटी सभी की कहानी कहेगी।
मेश्वो तट की यह माटी में, हवा में आप सर्वथा गुंजित रहेंगे।''[14]

उदारता :

मनीषकुमार सिंह का कथन है कि – "बात पुरानी है। तब मैं पाँच-छः वर्ष का था। उन दिनों बाबूजी भोगीलाल की चाल कमरा नं. 61 में रहते थे। बाबूजी का बड़ा स्नेह और प्यार दुलार मुझे मिलता रहा। इस समय मैं बाबूजी की छत्र-छाया में सेवारत हूँ। एक बार रतन बहन जो शिक्षक संकुल में परिचारिका हैं, उनसे कोई गलती हो गई। बाबूजी उससे बहुत क्षुब्ध हुए। उनका विचार था कि गलती सबसे होती है लेकिन गलती हो जाने पर उसके सुधार की जरूरत है। रतनबहन इन विचारों से गाफिल थी अत: बाबूजी ने बुलाकर बहुत डाँटा और कहा कि अब तुम को शिक्षण संकुल से निकाल कर ही घर जाऊँगा। कुछ देर बाद बाबूजी का हृदय स्वत: करुणा से भर गया। उन्होंने मुझसे कहा-रतन बहन को बुलाओ। मैं बुलाकर ले आया। वह डरी हुई थी। बाबूजी ने रतनबहन को देर तक समझाया। रतन बहन ने गलती महसूस की और बाबूजी ने अभय दान दे दिया। वह प्रसन्न मन से अपने काम पर चली गयी।

एक बार दीपावली का अवसर था। शान्ति-निकेतन हाईस्कूल के शिक्षकों को वेतन नहीं मिला था। सबके चेहरे लटके हुए थे। अधिकांश को दीपावली की छुट्टी में घर जाना था। दीपावली कैसे मनेगी इसकी भारी चिन्ता सबको सताए जा रही थी। बाबूजी को इसका पता लग गया कि वेतन न मिलने से शिक्षक उदास हैं। दीपावली जैसे त्यौहार पर वेतन न मिले यह दु:ख की बात है। यों तो पूरे भारत में दीपावली त्यौहार का बड़ा महत्त्व है लेकिन अहमदाबाद, गुजरात में तो दीपावली त्यौहार मनाने का तौर तरीका ही निराला है। बाबूजी चुप-चाप बैंक गए। खाते से धन निकाल कर लाए और सभी शिक्षकों में वितरित किए। सबने बाबू जी की उदारता की सराहना की और आभार माना। यही कारण है कि सभी शिक्षक बाबू जी को पितृवत् मानते हैं और बाबूजी सबको पुत्रवत्।"[15]

दुर्भाग्य से सौभाग्य तक :

राजेन्द्र प्रसाद सिंह का कथन है कि – ''चतुर्दिक व्याप्त बेरोजगारी के शिकंजे में जकड़ा हर इन्सान कभी अपने कर्मों को तो, कभी अपनी बदकिस्मती को कोसता है। ऐसे ही वातावरण से मैं भी गुजर रहा था कि अप्रत्याशित ढंग से वर्ष 1987 के मार्च महीने में मेरी किस्मत के दरवाजे पर हल्की सी दस्तक हुई कि उठो। तुम्हें तुम्हारी किस्मत बुला रही है। मैं भी आनन-फानन बेतरतीब उस अनजान दस्तक का अनुकरण करता हुआ गन्तव्य स्थल पर पहुँचा तो उस अनजाने सुनसान स्थल खण्ड में वीरानियों का ही विस्तरण था लेकिन वही से मध्यम स्वर में एक 'शान्ति' शब्द घोष मैंने अपने लिए सुना कि ठहरो! यही तुम्हारी कर्मस्थली है। वह कर्मस्थली माँ शान्ति के सुझाव, बाबूजी के पाण्डित्य, कृष्णजी के अविरल प्रयासों तथा वीरेन्द्र के अक्षुण्ण सहयोग का प्रतिफल है जो आज शांति निकेतन के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है।

वर्ष 1987 में डॉकटर साहब, वीरेन्द्र जी, मैं तथा सेवक दिनेश इस विद्यालय के कर्मचारी बने। मैंने अहर्निश इस कर्मस्थली रूपी माँ की सेवा का व्रत ले लिया। पिता तुल्य डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी स्वच्छ मन से अपने विचारों को हम लोगों के समक्ष रखते और इस संस्था के विकास के सपने को साकार करने की प्रेरणा देते। अपने विशाल अनुभवों द्वारा शिक्षा की महत्ता साथ बैठाकर इस संस्था के विकास के ताने बाने बुनते। विद्यालय अपने शैशवकाल की नाजुक स्थिति से गुजर रहा था। अनुभव विहीन हम लोग भी इस नवजात शिशु के लालन पालन में तत्परता से रत थे। उस समय सभी कार्यबोझ से बोझिल थे। वर्ष 1988 में कुछ अन्य शिक्षक बन्धुओं की नियुक्तियाँ हुई जिससे कार्यबोझ कुछ हल्का हुआ।

वर्ष 1969 की जातिवादी विभीषिका का स्वदर्शी चित्रण प्रस्तुत करके, आपने हम शिक्षकों का धैर्य और साहस बढ़ाया। आप स्वयं उस हृदय विदारक दृश्य के प्रत्यक्ष दर्शक हैं साथ ही साथ इस प्रलयंकारी विनाश से पीड़ित लोगों की रक्षा

'जान हथेली पर रखकर' की तथा अपने धैर्य और साहस की परिचय दिया।''[16]

संवेदनशील व्यक्तित्व :

'व्यथित'जी के मित्र रमानिवास सुधाकर प्रसाद मिश्र का कथन है कि –

''शाम को जब मैं घर लौटा तो अपने कक्ष में बैठा था कि अचानक मुझे डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी का एक प्रेरक प्रसंग याद आया। यह प्रसंग अप्रैल सन् 1996 का है। मेरी माताजी उच्च रक्तचाप से पीड़ित थी। एल.जी. चिकित्सालय अहमदाबाद में भरती थीं।

जहाँ मेरी माँ जीवन और मृत्यु से आँख मिचौली का खेल जारी था। मैं चारपाई के पास किंकर्तव्य विमूढ़ विचारमग्न बैठा था। अचानक किसी का स्नेहिल स्पर्श मेरे कंधों ने महसूस किया। मैं हतप्रभ देखता ही रहा सामने आदरणीय व्यथित जी जिन्हें मैं आदर से 'बाबूजी' कहता हूँ, खड़े थे। उनकी उपस्थिति मेरे लिए प्राणदायिनी संजीवनी सिद्ध हुई। माँ की स्वास्थ्य विषयक जानकारी लेने के बाद बाबूजी द्वारा व्यक्त की गई आत्मीयता पूर्ण संवेदना मेरे थके जीवन की अमूल्य ख्याती बन गई। बोले 'चिंता की कोई बात नहीं मैं हूँ न?' जितने पैसों की आवश्यकता होगी मैं दूँगा। इलाज में कोई कमी न होने पाए।

सचमुच ऐसे समय में व्यक्त की गई संवेदना और ढाढ़स तथा उचित समय पर दी गई आर्थिक सहायता ने मुझे अकल्पनीय बल प्रदान किया। मेरी नीगाहों में 'बाबूजी' मानवता के अप्रतिम पोषक लगे।

उदारमना प्रेरक व्यक्तित्व के धनी व्यथित जी चिंता, गहन, विक्षोभ और आवेग की मन:स्थिति को भाँपने में निपुण हैं। विक्षोभ क्रमश: बुद्धि विवेक और चिंतन तथा तार्किक शक्ति को कमजोर करती है। जिससे व्यक्ति अनिर्णय की स्थिति में पहुँच जाता है। ऐसी ही चिन्ता से चिंतित मैं था। मेरी चिंता का मुख्य कारण मेरा बटुआ था।

बटुआ खोने के दुसरे दिन मुझे भिक्षुकगृह के पास ईंधन गैस की एजेंसी में गैस सिलेन्डर लेने हेतु जाना था। इसी रास्ते में शांति निकेतन हिन्दी हायर सेकण्डरी स्कूल पड़ता था जहाँ मेरे छोटे भाई सुरेन्द्र नाथ त्रिपाठी सहायक शिक्षक के पद पर कार्यरत हैं। सोचा मिलता चलूँ। विद्यालय जाने पर पता चला त्रिपाठी किसी आवश्यक कार्यवश विद्यालय के प्राचार्य डॉ. कृष्णकुमार ठाकुर जी से मिलने उनके आवास पर गए हुए हैं।

मैंने सोचा इसी बहाने डॉ. साहब से मुलाकात हो जाएगी। वहाँ जाने पर मेरी अनापेक्षित मुलाकात डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी से हो गई। डॉ. साहेब के कक्ष में जैसे ही मैंने प्रवेश किया बाबूजी ने बड़ी ही आत्मीयता से मुझे अपने पास बैठाते हुए दु:खी स्वर में कहा 'सुना है कि कहीं आपका पर्स खो गया जिसमें राशन हेतु रु.3000/- थे।' इससे पहले कि मैं अपना स्पष्टिकरण दूँ बाबूजी डॉ. कृष्णकुमार को बुलाकर बोले; 'डॉकटर! मिश्र जी को अभी रु.3000/- दो। राशन कैसे आएगा ?' मेरे लाख मना करने के बावजूद बाबूजी नहीं माने।

ऐसा आत्मीयता पूर्ण व्यवहार, अपनापन कोई बिरला ही दे सकता है। पारिवारिक परिवेश में परिवार के प्रमुख सदस्य का जो प्रतिबिंब बाबूजी के व्यक्तित्व में परिलक्षित हुआ वह अनिर्वचनीय था। उदारमना बाबूजी का सद्व्यवहार किसी के लिए भी प्रेरणास्त्रोत व जीवन का प्रेरक-प्रसंग बन सकता है, इसमें रंचमात्र संदेह नहीं।''[17]

उदार व्यक्तित्व :

जगदीश चतुर्वेदी (पुजारी) का कथन है कि–''व्यथित जी को मैं बचपन से ही जानता हूँ। बरियार शाह इण्टर कालेज भरखर में वे दसवीं कक्षा में पढ़ते थे और मैं आठवी। उनके साहसी दिव्य गुणों से मैं भली भाँति परिचित था। वे जितने ही साहसी थे उससे कहीं अधिक उदार भी थे।

बचपन के बिछड़े बुढ़ापे में वे हमें ऐसे मिले कि शायद मैं उन्हें कभी भी भुला

नहीं पाऊँगा। व्यथित जी ने गाँव में अपनी साधना स्थली **'व्यथित शान्ति साधना केन्द्र'** पर एक मंदिर का निर्माण कराया। मुझे उसका पुजारी होने का सौभाग्य मिला। हनुमान जी की कृपा से मेरा दु:ख-दरिद्र दूर हो गया। मुझे मानसिक शान्ति मिली और मैं सुबह-शाम दोनों समय नियमित रूप से पूजा पाठ करने लगा।

गर्मी के दिन थे। आम का समय था। मेरी बगिया में कुछ पेड़ फले थे। मैंने व्यथित जी से बगिया में आकार आम खाने का आग्रह किया। वे आए। कुछ अच्छे-अच्छे आम धोकर सामने रख दिया। उस समय चार-पाँच छोटे-छोटे बच्चे आकर उनका मुँह ताकने लगे। मैं डाँट कर उन्हें भगाना चाहा किन्तु व्यथित जी ने वैसा करने से मुझे मना कर एक-एक आम उन पाँचों को थमा दिया।

बच्चे आम पाकर खुश हो गए और झपपट उन्हें खाकर फिर मुँह ताकने लगे। वे एक आम लेकर बाकी सबका सब उन बच्चों को थमा दिए। अब दूसरे आम भी नहीं रह गए थे। मुझे उन बच्चों पर काफी गुस्सा आ रहा था किन्तु व्यथित जी को उन बच्चों का हबर-हबर खाना बहुत अच्छा लग रहा था।

मैंने कहा-'ए साले दरिद्र हैं।' व्यथित जी ने हँसकर कहा-नहीं पुजारी बाबा, ए दरिद्र नहीं बल्कि दरिद्र नारायण हैं । भगवान भूखे हों और हम खाएँ, यह अच्छा नहीं लगता। व्यथित जी के हृदय की करुँणा में मेरा तम-मन नही गया।''[18]

बाबूजी की सहदयता :

राजेशकुमार सिंह का कथन है कि – ''एक बार एक साहित्यकार दूर से अपनी पुस्तकों का गट्ठर लेकर बाबूजी के पास आए। उनके आने पर बाबूजी घर पर नहीं थे। यहाँ पर उक्त साहित्यकार ने एक पत्र दिया जिसे डॉ आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' से लिखवाकर लाया था। संयोग से मैं उस समय टहलता हुआ आ गया था। मैंने पत्र को ले लिया। साहित्यकार ने मुझसे श्री रामानुज त्रिपाठी साहित्यकार गरएँ के घर का पता पूछा और वे कल पुन: लौटने के लिए कहकर चले गए। चले जाने पर मैंने पत्र को खोलकर पढ़ा उसमें प्रदीप जी ने लिखा था कि इनकी एक-

एक पुस्तक खरीद लीजिएगा, जिसे उस साहित्यकार ने काटकर एक दर्जन बना लिया था। मैंने सोचा बाबूजी से इस कटिंग का रहस्य पहले ही बता दूँगा। दूसरे दिन जब मैं नौ बजे ब़ाबूजी के पास आया तो देखा कि उक्त साहित्यकार गट्ठर लेकर आ चुके थे।

मैं अवाक रह गया। पत्र मैंने दे दिया। बाबूजी ने प्रदीप जी का पत्र देखकर उनसे पुस्तकों को देने के लिए कहा। उन्होंने सात दर्जन पुस्तकें मेज पर रखा दिया। बाबू जी ने लगभग 2500/- रु. उन्हें दिया खिलाया, पिलाया और विदा किया। पूछा बाबूजी आप पैसा क्यों दे दिए। उन्होंने कहा राजेश। इसमें दो बात है। एक तो प्रदीप जी का पत्र है दूसरे साहित्यकार का दर्द। इसलिए मैंने पैसे दे दिए।

संयोग वश एक हफ्ते बाद 'प्रदीप'जी बाबूजी से मिलने आए। मैं भी आया। मैंने अकेले में 'प्रदीप'जी से चर्चा कर दिया कि आप के मित्र आए थे। उन्होंने 7 दर्जन पुस्तक दिया और बाबूजी ने उन्हें 2500/- रु. दिए। 'प्रदीप' जी ने तुरन्त बाबूजी से निराकरण किया। बात सत्य निकली।

मेरा अनुमान सत्य था कि 'प्रदीप' जी ने सातो पुस्तकों की एक-एक प्रति लेने को कहा था परन्तु उस व्यक्ति ने काटकर एक दर्जन बना दिया था। बाबूजी की सहजता और दया का भाव ने सामने प्रस्तुत होकर ऐसा करने को बाध्य किया। इसी प्रकार अनेक अन्य सन्दर्भ और मिलते हैं कि बाबूजी नि:स्वार्थ भाव से गरीब की सेवा करते देखे गए हैं। एक व्यक्ति को मैं पहचानता नहीं था किन्तु देखा बाबूजी के यहाँ तीन दिन रुका रहा। शाम को कुछ कथा वार्ता भी सुनाया। बाबूजी का बिगड़ा मोटर भी बनवाया, देख रेख किया।

बाबूजी ने उसे 200/- रु. बनवाई दिया। जाते समय वह आदमी रोने लगा। कारण पूछने पर बाबूजी को बताया कि बाबूजी! हमारे ऊपर आर.सी. कटी है, घर जाने पर मैं बन्द हो जाऊँगा। बाबूजी उससे अकेले में बात कर रहे थे। थोड़ी देर

बाद मैंने देखा बाबूजी जेब से सौ-सौ के नोट गिनकर उसे दे रहे थे। उसे एक बैग भी दिए। वह बैग लेकर चला गया। बाबूजी सड़क पर उसे टैक्सी रोकवाकर बैठा दिए।

मैंने पूछा बाबूजी कैसा पैसा आप इस व्यक्ति को दे रहे थे। बाबूजी ने बताया गरीब आदमी विपति का मारा है। बैंक का लोन है। नहीं देगा तो बन्ध हो जायेगा। लड़की की शादी भी करना है। परेशान है। मैंने बहुत पूछा कितना दिया आपने, बाबूजी ने मुझे बताया नही। इस प्रकार बाबूजी का हृदय अगाध सिन्धु है।''[19]

स्मृतियों के झरोखे से :

श्याम सुन्दर शुक्ल का कथन है कि – ''सन् 1988 की बात है, मैं एक मिल में कार्यरत था। मिल में जो भी व्यक्ति काम करता है उसे मिल मजदूर के नाम से जाना जाता है, चाहे वह कितने ही बड़े पद पर क्यों न हो। मैं मिल में सुपरवाइजर पद पर कार्यरत था और साथ ही साथ विद्याध्ययन भी कर रहा था। पढ़ाई के लिए पैसे की आवश्यकता थी, अन्य आवश्यक खर्चे भी थे। मील की नौकरी के साथ-साथ विद्याभ्यास। इस प्रकार लक्ष्मी और सरस्वती की कृपा मुझे साथ-साथ प्राप्त हो रही थी। परिश्रम और लगन के बल पर मैंने पढ़ाई पूरी की। हमारे साथ कार्य करने वाले हमारे अनेक साथी कहीं न कहीं रोजगार पा लिए थे। कोई बैंक में लग गया था तो कोई किसी विद्यालय में। एक दिन जब मैं मिल के बाहर बैठा था, अचानक हमारे सामने से हमारे अधिकारी घर की तरफ जाते हुए दिखाई दिए। शिष्टाचार के नाते मैं उनको देखकर खड़ा हो गया। मुझे देखकर वे बोले-क्यों शुक्ला, क्या समाचार है ? मैंने कहा सब ठीक है। उन्होंने पूछा-क्यों, कहीं जाने की इच्छा नहीं हो रही है ? तुम्हारे सभी साथी चले गए। मैंने उत्तर दिया कि साहब, क्या करूँ, मैं तो सतत प्रयत्नशील हूँ किन्तु कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता।

उनको मुझसे अत्यधिक लगाव था, अत: उन्होंने मुझसे कहा कि - मेरे एक

मित्र हैं, अगर जाना चाहो तो मैं पता बता रहा हूँ, वहाँ जाकर देख लो। उनसे मिलकर आना फिर मुझे बताना। अगले ही दिन में अपने अधिकारी द्वारा बताए गए स्थान पर पहुँच गया। वहाँ पर मेरी मुलाकात डॉ. कृष्ण कुमारसिंह (आचार्य जी) से हुई। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि आप आए हैं ठीक किन्तु मैं कुछ कर नहीं सकता, आपको बाबूजी ('व्यथित'जी) से मिलना पड़ेगा । यहा के कर्ता-धर्ता बाबू जी ही हैं। मैंने पूछा-बाबूजी कब मिलेंगे, डॉ. साहब ने कहा-आप सायंकाल के समय आइए तो उनसे मुलाकात हो सकती है।

मैं दुसरे ही दिन संध्या के समय बाबूजी से मीलने के लिए चल पड़ा। अँधेरा छा गया था। थोड़ी-थोड़ी सर्दी पड़ रही थी। जब मैं वहाँ पहुँचा तो देखा एक लालटेन जल रही है, सामने एक गाय बँधी हुई है। पूछने पर पता चला कि बाबू जी अन्दर बैठे हुए हैं। आप अन्दर जाकर मिल सकते है। धैर्य व साहस सँजोये मैं दरवाजे तक पहुँच गया। वहाँ पर मैंने देखा कि एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति जो देखने में सन्त सरीखे लगते थे। आसन लगाए बैठे थे। उनके चहेरे पर शान्ति झलक रही थी। उन्हें देखते ही मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। ऐसे महान व्यक्तित्व से मेरी पहली मुलाकात थी। बाबूजी ने मुझे देखा, सहानुभूति पूर्वक अन्दर बुलाया, बैठाया और आश्वस्त किया। इसके पश्चात् तो मेरे आने-जाने व मिलने का क्रम बराबर बना रहा। दो-चार बार की मुलाकात के पश्चात् मुझे विश्वास हो गया कि मेरा उद्देश्य अवश्य पूर्ण हो जायेगा। तदनन्तर मेरी शिक्षक बनने की तमन्ना बाबूजी ने पूर्ण की।

फुर्सत के क्षणों में मैं प्राय: बाबूजी के पास बैठ जाया करता था ऐसे अवसरों पर आप अपने जीवन संघर्षों से प्राप्त अनुभवों की चर्चा किया करते थे, जिससे मुझे शारीरीक व मानसिक ऊर्जा प्राप्त होती थी। वे कहते कि विषम परिस्थितियों में भी व्यक्ति को अधीर नहीं होना चाहिए। धैर्य हीन व्यक्ति कभी प्रगति नहीं कर सकता। हमें निष्ठापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहिए। स्वभावत: बाबूजी जितने

ही सरल व विनम्र हैं, अनुसासन में उतने ही कठोर। **'कर्म ही पूजा है'** बाबूजी का मूल मंत्र है।

दुसरों की व्यथा से व्यग्र होने वाला कवि हृदय बाबूजी का **'व्यथित'** उपनाम सर्वथा सार्थक है। युग दर्पण काव्य-संग्रह में उन्होंने मजदूर वर्ग की व्यथा का उल्लेख किया है। मीलें बन्द हो गई, मजदूर बेकार हो गए। 'दाने-दाने को मोहताज मजदुर वर्ग की व्यथा के रेखांकित करते हुए' **'मैं बन्द मील का कारीगर'** शीर्षक कविता में वे कहते हैं -

मैं बन्द मील का कारीगर, बरबाद गुलिस्ताँ मेरा है।

विश्वास तुम्हें क्या होता है ? इन्सान खड़ा यह रोता है।

काम नहीं है दाम नहीं है जीने का अधिकार नहीं है।

जग की निर्मम चक्की में जो पिसा हुआ है।

उससे रिश्ता मेरा है।

मैं बन्द मील का कारीगर, बरबाद गुलिस्ताँ मेरा है।''[20]

बाबूजी के साथ बैठने पर वे अपनी कविता की पंक्तियों को सुनाने लगते थे। एक बार किसी आमंत्रण में जाते समय मैं अपनी गाडी बाबूजी के यहाँ छोड़ गया था। रात एक बजे जब मैं वीरेन्द्र भाई तथा राजेश जी के साथ लौटा तो देखा कि रात्री के तीसरे पहर वे अपनी कविता लिखने में मग्न थे। पहुँचते ही पास बुलाकर अपनी ताजी कविता सुनाकर उन्होंने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया, यात्रा की सारी थकान काफूर हो गयी।

बाबूजी प्राय: अपनी व्यथा सुनाते हुए कहते हैं कि जीवन में अनेक विसंगतियों को झेलते हुए धैर्य के साथ कार्य में संलग्न रहना और निरंतर ध्येय मार्ग की ओर अग्रसर होते रहना यही हमारा कर्तव्य है। विनोबा भावे के साथ बिताए हुए दिनों की याद को ताजा करते हुए वे कहते हैं कि बिहार राज्य के वीरान एवं उजाड़

स्थलों पर अपरिचित लोगों के साथ रात बिताना रुखी-सूखी खाकर जमीन पर सो जाना किन्तु धैर्य न खोना यही हमारी दिनचर्या थी। बाबूजी का विश्वास है कि माँ सरस्वती तथा हनुमान जी की कृपा सदा उनके ऊपर रहती है और उन्हीं की प्रेरणा से उनके सारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जाते हैं। बाबूजी के साथ उनकी साहित्यिक यात्रा में भी प्रवास का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हो चुका है। उनको उज्जैन नगरी में डॉ. भीमराव आम्बेड़कर संस्थान द्वारा सम्मानित किए जाने का वृद्ध कार्यक्रम था जिसमें भाग लेने के लिए मैं बाबूजी के साथ गया हुआ था। पूरे देश से अनेक सुप्रतिष्ठित कविगण पधारे हुए थे। बाबूजी से तो सभी परिचित थे, मुझको भी मनीषियों का आशीर्वाद उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुआ।

मेरे जीवन आदर्श :

अशोक टी. झा का कथन है कि –''सन् 1986 में अहमदाबाद के भवन्स कॉलेज से अपनी बी.एस.सी. की परीक्षा पास किया। तत्पश्चात् मैंने अपना बी.एड. भी 1987 में गुजरात विश्वविद्यालय से पुरा किया। मुझे छोटी सी नौकरी प्राईमरी में मिली जिससे में संतुष्ट नहीं था। इसी दरम्यान मेरी मुलाकात मेरे बहनोई ने श्री 'व्यथित'जी से करवायी। बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्तित्ववाले श्री 'व्यथित'जी से मेरी मुलाकात शांति निकेतन के प्रांगण में हुई।

मैं पहली ही मुलाकात में व्यथित जी से इतना प्रभावित हुआ कि मैंने अपने सम्बन्धी से कहा कि मुझे यदि इस विद्यालय में सेवा करने का मौका दिया तो मैं अवश्य सेवा करना चाहूँगा। थोड़े ही दिन बाद मुझे ऐसी सूचना मिली एवं मैं आप से मिलने अपने बहनोई के साथ ओढ़व आया। सायंकल का समय था। आप अकेले किसी साहित्य का अध्ययन कर रहे थे । अँधेरा इतना था कि हाथ-को हाथ नहीं दिखाई पड़ रहा था। आपने मेरे बहनोई के साथ मेरा भी स्वागत करते हुए कहा-'राजेश जरा जल्दी दो कप चाय बनवाना।' आपकी विनम्रता देखकर तो मैं अपने को आपसे मिलकर धन्य समझने लगा। फिर तो मैं आपको अपना आदर्श

मानने लगा। छोटी से छोटी बात मैं आप से परामर्श लिए वगैर नहीं करता था। आपने मुझे अपनी शरण में जगह देकर मुझे बड़ा ही कृतज्ञ बना दिया।

आदरणीय 'व्यथित' जी की एक बात को मैंने अपने अन्दर इस तरह उतार लिया कि मुझे आज तक सफलता मिल रही है आपकी वह बात कुछ इस तरह है। **'परदारेषु मातृवत पर द्रव्येषु लोष्टवत्'** आप जब कभी भी शिक्षकों की मिटिंग रखते तब बार-बार एक बात दुहराते थे कि-

Wealth is gone nothing is gone,
Health is gone somthing is gone, but,
If character is gone every thing is gone.".[21]

एक बार सन् 1996 में श्री 'व्यथित'जी द्वारा अपने निवास पर एक समारोह का आयोजन किया गया जिसमें कविता पाठ के पूर्व सम्मान समारोह रखा गया था जिसके अन्तर्गत साहित्यकार समाज के साहसी कर्मठी, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, निष्पक्ष न्यायिक अच्छे गायक तथा वृद्ध व्यक्तियों को सम्मानित किया गया था। उस समय अधिक प्रसन्नता हुई जब कि दीर्घ जीवियों में 88 वर्षीय दुखी हरिजन को स्वयं डॉ. जयसिंह बहादुरसिंह 'व्यथित' जी ने सम्मानित किया।

काव्य या साहित्यका उद्देश्य यश ओर अर्थ की प्राप्ति भी होती है। इसे कौन नहीं जानता कि बड़ी-बड़ी संस्थाएँ 'ऊँची सीढ़ी वाले' साहित्यकारों को प्रमुखता से सम्मानित एवं पुरस्कृत करती है। डॉ. व्यथित अपने सीमित संसाधनो में ही सत्पात्र साहित्यकारों को चाहे वह जहाँ का भी हो बिना किसी प्रकार का भेदभाव किए प्रसस्ति-पत्र, अंगवस्त्रम् तथा धन देकर सम्मानित करते हैं। हिन्दी साहित्य गरिमा पुरस्कारों के अन्तर्गत देश के कई साहित्यकार सम्मानित किए गए। डॉ. 'व्यथित' ने डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद उ.प्र. के कुलपति डॉ. अँगनेलाल की अध्यक्षता में सम्पन्न साहित्यकार सम्मान समारोह में अनेक साहित्यकार सम्मानित किए गए। इस प्रकार डॉ. 'व्यथित' साहित्यकारों का

सम्मान कर उनका सुहृद होने का प्रबल प्रमाण देते हैं।

'व्यथित'जी के सम्पूर्ण जीवनवृत का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि व्यथित जी एक असाधारण व्यक्तित्व की गरिमा से अभिमण्डित एक ऐसे विरल व्यक्ति हैं जो अपने अनेक प्रभामण्डलों से देदीव्य हैं, वे एक आत्मीय मित्र हैं, बुजुर्ग परिवार के प्रधान नियामक हैं, शिक्षाशास्त्री है, कवि हैं, समालोचक हैं, शिक्षक हैं, सामाजिक तथा राजनीतिक समझ से जुड़े उदारमना वयक्ति हैं, एक योगी की तरह निस्प्रभ और निर्वेद प्रक्त जीवन यापन करने वाले तथा जीवन संघर्ष में निरत एक ऐसे अजेय योद्धा हैं, जो समाज और परिवार के लिए प्रेरणा के स्रोत बनकर उभरे हैं।

गुजरात की गौरवशाली साहित्य सृजन की परंपरा में डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी एक मन्सवी पुरूष के रूप में सामने आते है। जिन्होंने अपने सात्विक आचरणों और सामाजिक पहचान बताई है।

इस अध्याय में उनके जीवनवृत्त से सम्बन्धित यथा प्राप्त सामग्री का उपयोग करते हुए उनके व्यक्तित्व का परिचय दिया गया है। अगले अध्याय में उनके कार्य क्षेत्र तथा उनकी विशिष्ट उपलब्धियों पर चर्चा करेंगे।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA
The M. S. University of Baroda

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/7

2) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/8

3) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/10

4) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/13

5) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/16

6) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/18

7) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/21

8) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/22

9) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/24

10) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/29

11) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/31-33

12) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/35

13) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/38-40

14) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/42

15) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/45

16) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/46

17) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/47

18) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/48

19) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/49

20) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/54

21) प्रधान संपा. कृष्णकुमारसिंह-डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-6/56